संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

वर्ष : १२
अंक : ११०
फरवरी २००२
माघ मास
विक्रम.सं. २०५८

हिन्दी

जिसमें होती है प्रसन्नता,
पाता वही है मुक्तता ।
सुख शांति भी पावे वही,
पाता वही है पूर्णता ॥

पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

सेवा नित गुरु की करूँ, गुरुद्वार पर आऊँ मैं। चरणों की धूलि को, निज शीश लगाऊँ मैं॥
छिन्दवाड़ा (म.प्र.) में पूज्यश्री का आशीष पाते हुए श्री कमलनाथजी।

छिन्दवाड़ा (म.प्र.) में आयोजित गीता भागवत सत्संग में पूज्यश्री के दर्शन व सत्संग हेतु उमड़ा जनसैलाब।

गोंदिया (महा.) के धनभागी भक्तगणों को मिला पूज्यश्री के अमृतवचनों का प्रसाद...।

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : ११०
९ फरवरी २००२
माघ मास, विक्रम संवत् २०५८

सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramamd@ashram.org
web-site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ एवं शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० एवं रात्रि १०.०० से १०.३०

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

परम ज्योति जगा देना

प्रभु ! मेरे उर अंतर में, परम ज्योति जगा देना।
जले नित ज्ञान का दीपक, अहं तम भय मिटा देना ॥
मन-मंदिर की मूरत में, करूँ दीदार मैं तेरा।
परम पावन रहे जीवन, मेरे अवगुण भुला देना ॥
निहारूँ नूरे नज़रों में, छवि तेरी ही प्यारी को।
सदा एहसास हो तेरा, चित्त-चमन खिला देना ॥
संचित हो दिल के दामन में, सुमन श्रद्धा और भक्ति के।
हो जगमग ज्ञान की बाती, यह उर आँगन महका देना ॥
रहे हरदम चिंतन-मनन तेरा, प्रभु ! तेरी ही महिमा का।
रँग दो अपने ही रंग में, 'साक्षी' अपना बना देना ॥
बसी है तन सितारों में, तेरी झंकार मेरे दाता।
स्वर सोऽहं शिवोऽहं में, सदा मुझको डुबा देना ॥
रहे आशिक सदा मनवा, तेरी हस्ती और मस्ती का।
मधुर निज नाम का प्याला, प्रभु भर-भर पिला देना ॥

- जानकी ए. चंदनानी, अमदावाद।

*

जब तक न पूरा कार्य हो, उत्साह से करते रहो।
पीछे न हटिये एक तिल, आगे सदा बढ़ते रहो ॥
उत्साह बिनु जो कार्य हो, पूरा कभी होता नहीं।
उत्साह होता है जहाँ, होती सफलता है वहीं ॥
आपत्तियाँ सब झेलिये, मत कष्ट से घबराइये।
हो मृत्यु का भी सामना, हटिये नहीं मर जाइये ॥
कायर भगे रणक्षेत्र से, रणधीर हटता है नहीं।
होती जहाँ है वीरता, होती सफलता है वहीं ॥
उपदेश लीजे प्राज्ञ से, मत अन्य को सिखलाइये।
व्याख्यान ही मत दीजिये, करि कार्य कुछ दिखलाइये ॥
बकवाद करने मात्र से, कुछ कार्य सरता है नहीं।
जैसा कहे वैसा करे, होती सफलता है वहीं ॥

- संत भोले बाबा।

तत्त्व दर्शन

परमात्म-प्राप्ति के सोपान

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

परमात्मा अच्छे हैं... दयालु हैं... कृपालु हैं... वास्तव में ऐसा कहना भी अपनी बालबुद्धि का परिचय है। परमात्मा के विषय में जो लोग शेखी बघारते हैं, वे समझो, परमात्मा को गाली ही देते हैं, लेकिन ये तोतली भाषा की मीठी गालियाँ हैं, इनसे ईश्वर को मजा आता होगा।

जैसे, कोई अपने करोड़पति पिता को बोले : ''पिताजी ! आपके पास तो बहुत सारे रुपये हैं। आप तो तीन हजार रुपये के मालिक हैं।''

पिता भी कह देता है : ''हाँ, बेटा ! ठीक है।''

ऐसे ही लोग भगवान को कह देते हैं कि 'भगवान ! आप तो त्रिलोकीनाथ हैं। आप तो चौदह भुवनों के स्वामी हैं।'

अरे ! क्या आपको पता है कि आपके शरीर में कितने जीवाणु (बैक्टीरिया) हैं ? नहीं, ऐसे ही सृष्टिकर्त्ता ईश्वर को भी पता नहीं है कि कितनी सृष्टियाँ हैं मेरे में।

यहाँ कोई संदेह कर सकता है कि 'ईश्वर तो सर्वान्तर्यामी हैं फिर भी उनको पता नहीं ?' जैसे, आप अपने पूरे शरीर को जानते हो - पैर पर चींटी चले, नाक पर मच्छर काटे और कान पर मक्खी बैठे तो आपको एक साथ अनुभव होगा कि क्रमशः होगा ? एक साथ अनुभव होगा। आप सारे शरीर में सर्वव्यापी हो फिर भी शरीर में कितने जीवाणु (बैक्टीरिया) हैं आप गिनकर नहीं बता सकते। ऐसे ही ईश्वर में कितनी सृष्टियाँ हैं, वह ईश्वर को भी पता नहीं है। जब ईश्वर को ही पता

नहीं तो आपको-हमको कैसे पता चलेगा ?

कई कोट पाताल के वासी।
कई कोट जतींदर जोगी।
कई कोट ब्रह्मरस भोगी ॥

कई करोड़ ब्रह्मज्ञानी हो गये। भले इस लोक में हों या अन्य लोक में। वे ब्रह्मज्ञान की चर्चा करते-करते ब्रह्मरस का पान करते हैं।

ब्रह्म-परमात्मा की चर्चा हो रही है, यह भी तो ब्रह्मरस है। बिना वस्तु, बिना व्यक्ति, बिना सुविधा के भी अंदर का रस आ रहा है - यह ब्रह्मरस है, परमात्मरस है।

विषय-विकारों का जो रस होता है, वह संसार में गिराता है। ध्यान का रस है शांत रस, जो सामर्थ्य बढ़ाता है। भगवद्रस भाव को बढ़ाता है और तत्त्वज्ञान का रस नित्य एकरस रहता है। जीवनमुक्ति का रस नित्य नवीन रस है। जिसने इस रस को पाया है उसका फिर पुनर्जन्म नहीं होता है।

लोगों का भगवान उनका माना हुआ भगवान है क्योंकि लोगों को भगवत्स्वरूप का ज्ञान नहीं है।

जो भगवान सदा है, वह सर्वत्र भी है। जो सर्वत्र है, वह सबमें है। जो सबमें है वह हममें भी है। जो कभी हैं और कभी नहीं हैं, वे भगवान नहीं हो सकते। जो कहीं हैं और कहीं नहीं हैं, वे भगवान नहीं हो सकते हैं। भगवान के रूपविशेष हो सकते हैं।

परब्रह्म परमेश्वर तो सारे संसार में व्याप्त हैं। किसी व्यक्ति ने महात्मा से पूछा :

''महाराज ! सर्वत्र भगवान हैं ?''

महात्मा : ''हाँ।''

व्यक्ति : ''महाराज ! आप पक्का कहते हैं ?''

महात्मा : ''अरे, पक्का नहीं तो कच्चा है क्या ?''

व्यक्ति : ''महाराज ! आपको मिले हैं ?''

महात्मा : ''हाँ।''

व्यक्ति : ''आपको सर्वत्र दिखते हैं ?''

महात्मा : ''हाँ।''

व्यक्ति : ''महाराज ! फिर हमलोगों को क्यों नहीं दिखते ?''

महात्मा : ''मुफ्त में सवाल का जवाब पूछेगा ? कुछ सेवा वगैरह भी कर, दूध तो पिला।''

वह व्यक्ति कटोरा भरकर दूध ले आया और बोला : ''लीजिये, महाराज !''

महाराज ने पूछा : ''दूध में मक्खन होता है और दूध से ही घी निकलता है न ?''

व्यक्ति : ''हाँ, महाराज !''

महात्मा : ''दूध में ही घी अथवा मक्खन व्याप्त है न ?''

व्यक्ति : ''हाँ, महाराज !''

महाराज ने दूध में उँगली घुमाते हुए कहा : ''झूठ बोलता है। कहाँ व्याप्त है ?''

व्यक्ति : ''महाराज ! व्याप्त है लेकिन दिखता नहीं है। देखने के लिए पहले दूध को गरम करना पड़ेगा, फिर इसमें दही डालकर जमाना पड़ेगा, फिर इसे मथना पड़ेगा। उसके बाद मक्खन निकलेगा।''

महात्मा : ''बस, ऐसे ही परमेश्वर सर्वत्र है। पहले संयम आदि करके अपने हृदय को, अपने अंतःकरण को शुद्ध करो। फिर ध्यान करके इसमें परमात्मभाव को, ज्ञान को जमाओ। फिर आत्मविचार करके अनात्मा को छोड़ते जाओ और आत्मा को, **'अहं ब्रह्मास्मि'** को समझते जाओ तो परमात्म-प्राप्तिरूपी मक्खन तैयार ! तब सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर के दर्शन हो सकते हैं। दूध पीना नहीं था, केवल तुझे समझाना था। जा, दूध ले जा। जैसे दूध में मक्खन व्याप्त है, वैसे ही सर्वत्र परमेश्वर व्याप्त है।''

उस सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर को जानने के तीन सोपान हैं :

(१) पुराने संस्कारों के आकर्षणों को निकालना। मनुष्य को चाहिए कि अपने पुराने दोषों को निकालने का यत्न करे। पुरानी वासना के अनुसार जो मन बह रहा है उसको ईश्वर की ओर मोड़े।

(२) गुणों का आदान करना। भगवान सर्वगुण-संपन्न हैं। किसीमें बुद्धि की कुशलता है। किसीमें बल की प्रधानता है। किसीमें समता का गुण है। किसीमें सत्य का गुण है। किसीमें स्मृति निखरी है। किसीमें

निर्भयता निखरी है। ये जो सारी निखारें हैं वे उस परब्रह्म परमात्मा की ही सत्ता की किरणें हैं।

अपने चित्त में गुणनिधि परमेश्वर हैं। उनका जो गुण अपने में निखरा है, उस गुण को निखारते-निखारते गुण के मूल (परमेश्वर) को धन्यवाद देना चाहिए, उन्हीमें विश्रांति पानी चाहिए। जैसे, श्रीकृष्णावतार में प्रेम-गुण का निखार है, श्रीरामावतार में सत्य-गुण का विशेष निखार है, कपिलावतार में आत्मज्ञान का विशेष निखार है तथा नृसिंहावतार और परशुराम अवतार में बल के गुण का निखार है।

ऐसे ही अपने जीवन में भी किसी-न-किसी गुण का निखार होता ही है। किसीमें श्रद्धा के गुण का निखार है, किसीमें समता का निखार है तो किसीके जीवन में एक-दूसरे में सुलह कराने का, शांति स्थापित करने के गुण का निखार है। श्रद्धा, शांति, प्रेम, समता, निर्भयता आदि जो भी सद्गुण हैं वे सारे सद्गुण सत्यस्वरूप ईश्वर के ही हैं।

अपने जीवन में भी कोई-न-कोई विशेष गुण आपको मिलेगा। जो कुछ विशेषता है वह उस सच्चिदानंद की विशेष किरण है। सब लोगों की विशेषता अपने में न भरो तो कोई बात नहीं लेकिन अपनी विशेषता को निखारते-निखारते आप उस गहराई में शांत हो सकते हो, जहाँ से वह विशेषता आती है। जैसे, सूर्य की भिन्न-भिन्न किरणें सूर्य के ही आधार से दिखती हैं, वैसे ही समस्त गुणों का आधार है परमात्मा। उस गुणनिधान परमात्मा में ही विश्रांति मिले ऐसा प्रयास करना चाहिए एवं दूसरों की विशेषताओं का आदर करना चाहिए। जो दूसरों की विशेषताओं का आदर नहीं करता उसमें मत्सर दोष आ जाता है। मात्सर्यवाला पुरुष दूसरे के गुणों को नहीं देख सकता है।

(३) परमात्मा को जानने का तीसरा सोपान है-आत्मचिंतन करना। गुण-दोषमयी दृष्टि एवं पाप-पुण्य का मिश्रण लेकर मनुष्य-शरीर बना है। उन पाप-पुण्यों के प्रभावों को मिटाने के लिए आत्मचिंतन करें।

आत्मचिंतन का मतलब क्या है ? जैसे यह पुष्पों की माला है तो 'यह माला है, मैं माला नहीं हूँ। माला मुझे दिखती है तो मुझसे अलग है।' ऐसे ही 'यह हाथ है, मैं हाथ नहीं हूँ... यह शरीर है, मैं शरीर नहीं... मैं मन नहीं... मैं इंद्रियाँ नहीं...' इस प्रकार नहीं, नहीं करते-करते मन शांत हो जायेगा। शून्यमना हो जायेगा। ऐसी निःसंकल्प अवस्था आत्मचिंतन से प्राप्त होती है। आरंभ में यह निःसंकल्प अवस्था भले एक सेकेंड के लिए हो फिर बढ़ाते-बढ़ाते दो सेकेंड की हो जायेगी। ऐसा करते-करते मन यदि भागने लगे तो ॐ का दीर्घ उच्चारण करें, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करें अथवा श्वासोच्छ्वास की गिनती करने लगें या विशाल आकाश की ओर दृष्टि करके वृत्ति व्यापक करने से मन निःसंकल्प नारायण के सुख में स्थित होने लगेगा।

इन तीन सोपानों को पार करके मनुष्य सर्वत्र व्याप्त परमात्मा का दीदार करने में सफल हो सकता है।

* अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इष्ट की उपासना का तात्पर्य है कि कैसे भी करके इष्टाकार वृत्ति हो, अंतरात्मा का सुख मिले, अंतर-आराम अंतर-रस मिले। विकारी सुखों में जीव सदियों से भटकता आ रहा है। विषय-विकार रहित शाश्वत सुख की प्राप्ति का मार्ग है इष्ट-उपासना। इष्ट-उपासना से नश्वर चीजें चाहना हीरे के बदले कौड़ी की चाह करना है। उपासना का फल शाश्वत आनंद होना चाहिए।

* भूल को सही सिद्ध करनेवाले ही भूल का कारण बताया करते हैं और अपनी भूल को और गहरा उतारने का दुर्भाग्य बनाया करते हैं। ऐसे दुराग्रही लोग तटस्थ, सत्य अन्वेषक नहीं हो सकते। वे सत्य स्वीकार नहीं कर सकते। जो अपनी भूल को तटस्थ होकर स्वीकारते व सुधारते नहीं उन पर अहं हावी है। अतः सावधान ! अपने शत्रु न बनें मित्र बनें। अपनी भूल को खोजें व सुधारें। बचाव न करें और कारण न दें। अपनी भूल को उखाड़ फेंकने में बहादुर बनें। ॐ... ॐ... ॐ...
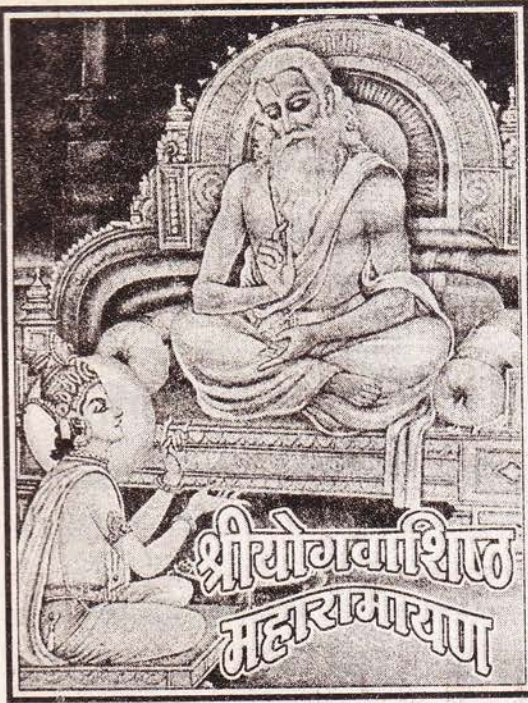
मनु और इक्ष्वाकु संवाद

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' के निर्वाण प्रकरण में आता है :

भगवान श्रीराम के पूर्वज राजा इक्ष्वाकु मनु के पुत्र थे। वे भली प्रकार प्रजा का पालन करते थे।

एक बार उनके मन में विचार उठा कि 'मैं महीपति होकर जय-जयकार सुन रहा हूँ, राज्य कर रहा हूँ लेकिन मेरी मौत तो नजदीक आ रही है। जिस शरीर को भोगों का मजा दिलाता हूँ वह तो एक दिन जल जायेगा। हाथ क्या लगेगा ? संसार में जरा-मरण आदि बड़े कष्ट हैं। इस संसार-दुःख से तरने का उपाय क्या है ?'

इतने में वहाँ आकाशमार्ग से मनु महाराज पधारे। राजा इक्ष्वाकु ने उनका पूजन-सत्कार करके उनसे प्रश्न किया : ''हे भगवन्! मेरी उम्र ऐसे ही नष्ट हो रही है। जिंदगी के दिन ऐसे ही खत्म हो रहे हैं। कितना खाया, कितना पाया, कितना घूमा, कितना देखा लेकिन आखिर क्या ? सब यहीं पड़ा रह जायेगा। यह शरीर भी जला दिया जायेगा तो मेरे हिस्से में क्या आयेगा ? मुझे बहुत चिंता होती है।

मेरे हृदय में संसार बसता है। जैसे समुद्र को बड़वाग्नि जलाती है, वैसे ही मुझको संसार जलाता है। इससे आप वही उपाय कहिये, जिससे मुझको शांति प्राप्त हो।''

मनु महाराज ने कहा : ''हे राजन् ! तू शुद्ध और राग-द्वेष से रहित, आत्मारामी, नित्य अंतर्मुख रह। जब तू आत्मारामी होगा, तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जायेगी और तू शीतल चंद्रमा-सा पूर्ण हो जायेगा।''

जो नित्य अंतर्मुख रहने का अभ्यास करता है उसका राग-द्वेष मिट जाता है। जो भोजन मिले वह खा ले। यह चाहिए, वह चाहिए... नहीं। जहाँ नींद आये सो जाय। एयरकंडीशन चाहिए, कूलर चाहिए, हीटर चाहिए... नहीं। रंगीन टी.वी. चाहिए, महँगी गाड़ी चाहिए... इस चाहिए-चाहिए में जिंदगी मत बिताओ, वरन् नित्य अंतर्मुख रहो। राग-द्वेष से रहित होकर चित्त को अपने परमेश्वर-स्वभाव में लगा दो। इससे तुम्हारा चैतन्य-स्वभाव जाग्रत होगा। तुम्हारे सारे दुःख सदा के लिए निवृत्त हो जायेंगे।

तुम ज्ञानवान की नाईं विचरण करो। जैसे आकाश में बादल दिखते हैं, फिर भी आकाश का कुछ भी नहीं बिगड़ता है, ऐसे ही ज्ञानवान होकर राज्य करोगे या भोग में रहोगे फिर भी तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।

जैसे तिनके को जरा-सी हवा उड़ाकर ले जाती है लेकिन सुमेरु पर्वत को तो आँधी-तूफान भी नहीं उड़ा सकते। ऐसे ही तुम भी अचल परमात्म-ध्यान, ज्ञान का अभ्यास करके राग-द्वेष से रहित होकर जीवन्मुक्त होकर विचरण करो।

तुम ज्ञानवान जैसा जीवन जियो। फिर तुम जिस ईंट पर पैर रखोगे, वह ईंट भी पूजनीय हो जायेगी, नमस्कार करने योग्य हो जायेगी। तुम जिस वस्तु को देखोगे-स्पर्श करोगे, वह वस्तु प्रसाद बन जायेगी।

ऐसे ज्ञानवान को तो प्रणाम है लेकिन ज्ञानवान की जिस पर दृष्टि पड़ती है वह भी पुण्यात्मा हो

जाता है। ऐसे परमात्म-ज्ञान में तुम नित्य अंतर्मुख होने का अभ्यास करो।''

ज्ञानवान कैसे होते हैं ? वे सबमें समान रूप से ब्रह्म को देखते हैं। अष्टसिद्धि और नवनिधि भी उन्हें तृण के समान लगती है।

तुलसीदासजी महाराज कहते हैं :

ज्ञान मान जहँ एको नाहीं।
देखत ब्रह्म समान सब माहीं।
कहिये तासु परम बिरागी।
तृण सम सिद्धि तीन गुण त्यागी ॥

ज्ञानवान को अष्टसिद्धि पाने की भी इच्छा नहीं होती है तो राज्य पाने की तो बात ही क्या है ?

कितना भी राग-द्वेष करो, थक जाते हो फिर विश्रांति की जरूरत पड़ती है। विश्रांति पाते हो तो सामर्थ्य आता है, शांति मिलती है। शरीर विश्रांति पाता है तो शरीर की थकान मिटती है लेकिन राग-द्वेष से रहित परमात्मा में शांत हो तो तुम्हारे जन्मों-जन्मों की थकान मिट जायेगी। फिर मृत्यु का भय नहीं रहता है। 'आयुष्य क्षीण हो रही है...' - ऐसी भ्रांति नहीं रह जाती है। ऐसे अमर आत्मपद को पाने का अभ्यास करो।

❊ 'हे जनक! चाहे देवाधिदेव महादेव आकर आपको उपदेश दें या भगवान विष्णु आकर उपदेश दें अथवा ब्रह्माजी आकर उपदेश दें लेकिन आपको कदापि सुख न होगा। जब विषयों का त्याग करोगे तभी सच्ची शांति व आनंद प्राप्त होंगे।'

❊ उत्तम अधिकारी जिज्ञासु को चाहिये कि वह ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु के पास जाकर श्रद्धापूर्वक महावाक्य सुने। उसका मनन व निदिध्यासन करके अपने आत्मस्वरूप को जाने । जब आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है तब ही परम विश्रांति मिल सकती है, अन्यथा नहीं। जब तक ब्रह्मवेत्ता महापुरुष से महावाक्य प्राप्त न हो तब तक वह मन्द अधिकारी है। वह अपने हृदयकमल में परमात्मा का ध्यान करे, स्मरण करे, जप करे। इस ध्यान-जपादि के प्रसाद से उसे ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु प्राप्त होंगे।

(आश्रम की पुस्तक 'पंचामृत' से)

भक्तों की अनुपम भक्ति

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

श्रीमद्भागवत में दसवें स्कंध के ८६वें अध्याय में यह कथा आती है :

विदेह की राजधानी मिथिला में भगवान के एक भक्त रहते थे - ब्राह्मण श्रुतदेव। वे इतने प्रेमी भक्त थे कि बस, भगवान को देखते-देखते ध्यानमग्न हो जाते थे। दैवयोग से जो आ प्राप्त होता वे उसीमें संतुष्ट रहते थे और गृहस्थ-जीवन जीते हुए भी अपने मन-बुद्धि को संसार की आपाधापी से बचाकर अपने परमात्मस्वरूप में लगाते थे।

जो भ्रकुटि में ध्यान करते हैं वे विकारों पर जल्दी विजय पा सकते हैं और उनकी प्रार्थनाएँ जल्दी फलती हैं।

विदेह के राजा बहुलाश्व भी भगवान के बड़े प्रेमी भक्त थे एवं भगवान के दर्शन की इच्छा रखते थे और ब्राह्मण श्रुतदेव भी मन-ही-मन भगवान को याद करते हुए प्रार्थना करते थे कि 'द्वारिकाधीश के यहाँ वैभव की क्या कमी है ? लेकिन मुझ ब्राह्मण की तो वहाँ तक पहुँचने की क्षमता नहीं है। मैं इतना गरीब ब्राह्मण हूँ कि द्वारिका तक नहीं आ सकता हूँ लेकिन आप चाहो तो इधर आ सकते हो। कब आओगे, नाथ ! कब पधारोगे ?...'

एक दिन भगवान के भी मन में उन दोनों भक्तों के पास जाने की इच्छा हो गयी। जैसे, एक मित्र दूसरे मित्र को याद करता है तो उस दूसरे मित्र को भी अपने मित्र की याद आ ही जाती है। तुम गाड़ी से प्यार करो तो गाड़ी तुम्हें प्यार नहीं करती है। तुम मकान से प्यार

करो तो मकान तुमसे प्यार नहीं करता है क्योंकि मकान, गाड़ी, आभूषण आदि जड़ हैं लेकिन मित्र से प्यार करते हो तो मित्र भी तुम्हें चाहता है क्योंकि मित्र चेतन है। ऐसे ही तुम परमात्मा को चाहो तो परमात्मा भी तुम्हें अवश्य चाहेगा।

भगवान को चाहते-चाहते राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण दोनों की भगवान के दर्शन की तड़प बढ़ गयी। जैसे पानी ८० डिग्री पर होता है तब भी उसे गर्म बोलते हैं और ९० डिग्री पर होता है तब भी उसे गर्म बोलते हैं लेकिन वह उबलता १०० डिग्री पर ही है, ऐसे ही जब तड़प बढ़ती है तो भगवान से भी रहा नहीं जाता है। फिर या तो भगवान स्वयं प्रगट होते हैं या जिनके हृदय में वे प्रगट हुए हैं ऐसे संतों की मुलाकात करवा देते हैं।

श्रीकृष्ण ने आदेश दिया : 'रथ तैयार करो।'

द्वारिका में रथ की तैयारियाँ होने लगीं। विशाल दिव्य रथ में देवर्षि नारद, वेदव्यासजी, वामदेवजी, परशुरामजी, शुकदेवजी, असित, आरुणि, कण्व, मैत्रेय, च्यवन, बृहस्पति आदि ऋषियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण अपनी राह देखते भक्तों को निहारने के लिए निकल पड़े।

इधर भगवान श्रीकृष्ण अपने भक्तों की मानसिक पुकार तथा हृदय की व्यथा का एहसास करते हुए मिथिला की ओर जा रहे थे और उधर ब्राह्मण श्रुतदेव और राजा बहुलाश्व उन्हें खूब याद कर रहे थे...

'भगवान श्रीकृष्ण मिथिला आ रहे हैं...' यह समाचार वायुवेग से चहुँओर फैल गया। भगवान श्रीकृष्ण को निहारने के लिए मार्ग में आनेवाले नगरों के सभी नर-नारी उमड़ पड़े। श्रीकृष्ण अपनी मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवन एवं मकरंद रसभरी दृष्टि से सबको दर्शन देते हुए एवं पावन करते हुए ऋषियों समेत मिथिलावंशी राजा बहुलाश्व के नगर में पहुँचे।

राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण की खुशी और आनंद का वर्णन करना कवियों के लिए भी कठिन हो गया...

ये राज समझ में तो आता है, समझाया नहीं जाता है।

भक्त और भगवान, संत और सत्संगी के बीच क्या आध्यात्मिक संबंध होता है ? किस स्नेहमयी सरिता में भक्त और संत दोनों सराबोर होते हैं ? इसे तो सगुरे साधक ही जानें। संत-सान्निध्य का माहात्म्य तो पुण्यात्मा सत्संगी ही जान पाते हैं, निगुरे बेचारे क्या जानें।

हजारों-हजारों भक्तों को प्रेमभरी चितवन से निहारनेवाले, आत्मशांति बरसानेवाली निगाहों के धनी, मधुर मुस्कान देनेवाले, मकरंद रस का पान करानेवाले, अनुभव के धनी श्रीकृष्ण को देखते ही श्रुतदेव रोमांचित हो उठे, उनकी आँखें प्रेमाश्रुओं से भर गयीं, हृदय भावभीना हो गया, वाणी गद्‌गद हो गयी... भक्त की ऐसी स्थिति का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा है :

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

'जिसकी वाणी प्रेम से गद्‌गद हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षण के लिए भी रोने का ताँता नहीं टूटता परंतु जो कभी-कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है, कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वर से गाने लगता है तो कहीं नाचने लगता है, भैया उद्धव ! मेरा वह भक्त न केवल अपने को बल्कि सारे संसार को पवित्र कर देता है।'

(श्रीमद्भागवत : ११.१४.२४)

राजा बहुलाश्व भी श्रीकृष्ण को पाकर फूले न समाये। उनकी बाह्य सूझ-बूझ खो गयी। वे आंतरिक भावों से, पुष्पों से, दीपों से श्रीकृष्ण का सत्कार करने में लग गये।

एक तरफ राज्यसत्ता का वैभव सत्कार कर रहा है तो दूसरी तरफ हृदय की प्रेमसत्ता का वैभव सीधे-सादे जंगल के पुष्पों से श्रीकृष्ण का पूजन कर रहा है।

श्रीकृष्ण तो वैभव की पूजा और गरीबी की पूजा में कोई फर्क नहीं समझते हैं। वे तो केवल प्रेम के ही भूखे होते हैं। श्रीकृष्ण दोनों की पूजा स्वीकार करते हुए दोनों को निहार रहे हैं। दोनों भक्त कुछ कहने जाते हैं लेकिन उनकी वाणी भावों का वर्णन

करने में असमर्थ हो गयी है ।

राजा बहुलाश्व की आँखों से प्रेमाश्रु झर रहे हैं... वे हृदय से ही विनती कर रहे हैं और श्रीकृष्ण उसके भावों को पढ़े जा रहे हैं... । ऐसे ही श्रुतदेव भी कुछ बोलने के काबिल न रहे । वे बिना बोले ही बोले जा रहे हैं और श्रीकृष्ण बिना सुने ही समझे जा रहे हैं...

प्रेमाभक्ति की भाषा ही निराली होती है। श्रीकृष्ण दोनों के भाव समझ गये । दोनों चाहते हैं कि 'हे ईश्वर ! हे ब्रह्मरस के दाता ! हे प्राणिमात्र के परमहितैषी ! आप हमारे घर पधारें ।' ब्राह्मण श्रुतदेव कहते हैं कि 'मैं कहने के काबिल नहीं हूँ लेकिन तुम्हें छोड़ पाऊँ ऐसी मेरी स्थिति नहीं है । हे केशव ! तुम्हें कह पाऊँ ऐसे मेरे पास शब्द नहीं हैं । मुझ गरीब ब्राह्मण के घर पर पधारें ।'

राजा बहुलाश्व मन-ही-मन प्रार्थना करते हैं कि 'हे योगेश्वर ! हे परमेश्वर ! हे सर्वाधार ! मैं कैसे कहूँ कि आप मुझ भोगी के घर पर पधारें ? फिर भी प्रार्थना करता हूँ कि आप अवश्य पधारें ।'

दोनों की वाणी चुप है लेकिन उनका दिल आमंत्रण दिये बिना नहीं मानता है । दोनों ने अपना अहं गला डाला था ।

ये प्रेम सुराही वो पिये जो शीश दक्षिणा देय ।

जहाँ अहं होता है वहीं संघर्ष होता है तथा वहीं अभाव खटकता है और वहीं अपमान और बेइज्जती का सवाल पैदा होता है । अहंकार भक्तिमार्ग में बड़ा विघ्न है ।

दोनों ने अपना अहं पिघला डाला था तो श्रीकृष्ण का अहं तो था ही कहाँ ? वे तो सर्व में अपना-आपा ही निहारते हैं । सर्वेश्वर श्रीकृष्ण समझ गये कि दोनों की पुकार है कि 'श्रीकृष्ण मेरे यहाँ आयें ।'

श्रीकृष्ण दोनों की मौन स्तुति को मौन स्वीकृति देते हुए निगाहों से हँस पड़े । योगी योगेश्वर निगाहों से ही ऐसी मधुर मुस्कान देते हैं कि दुनिया के सुख-वैभव की मुस्कान उसके आगे दो कौड़ी की भी नहीं रहती । ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की मुस्कान ऐसी ही होती है ।

दोनों भक्तों को मौन स्वीकृति तो मिल गयी कि 'मैं आऊँगा लेकिन श्रीकृष्ण अब पहले किसके यहाँ आयेंगे ?' यही सोचकर दोनों भक्त एक-दूसरे की ओर देखने लगे ।

नयना देत बताय सब, जीय को भेद अभेद ।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कह देत ॥

किसीका मुख देखकर ही पता चल जाता है कि यह 'हाँ' बोलेगा या 'ना' बोलेगा । मौन की, निगाहों की भाषा समझदार लोग समझ ही जाते हैं । आपने किसीसे कोई प्रार्थना की लेकिन सामनेवाला चुप है, चेहरे पर मुस्कान नहीं है अथवा प्रार्थना सुनकर समय व्यतीत करता है तो आप समझ जाते हैं कि यह 'ना' बोलेगा ।

मौनं काल विलंबश्च भ्रुकुटि भूमि दर्शनम् ।
प्रयाणान्य वार्ता च न कार षट् लक्षणम् ॥

'ना' बोलने के छः लक्षण हैं : मौन रहे, काल व्यतीत करे, विलक्षण खुजलाहट करे, भ्रकुटि चढ़ा दे, भूमि देखने लग जाय अथवा वहाँ से चल दे ।

लेकिन श्रीकृष्ण के हृदय में 'ना' कैसे हो सकती है । कृष्ण का हृदय तो भक्तों की भक्ति से हमेशा रीझा रहता है । **भगवान सदा भक्त के वश में होते आये...**

उधो ! मोहे संत सदा अति प्यारे ।
मैं संतन के पीछे जाऊँ जहँ जहँ संत सिधारे ।

श्रीकृष्ण कहते हैं :

''श्रुतदेव ! मुझे स्वर्ग, वैकुंठ या द्वारिका भी उतनी प्रिय नहीं है जितनी हृदय को पिघलानेवाली प्रेमाभक्ति प्यारी है । मैं उनका ऋणी हूँ जो मुझसे निष्काम प्रेम करता है । तुम्हारे पास साधन कम है लेकिन तुम संकोच न करो । मिथिलेश ! तुम्हारा राजवैभव मुझे न जँचेगा ऐसा संदेह न करो । मुझे तो तुम दोनों के हृदय की प्रेमाभक्ति ही खरीद चुकी है । मैं तो प्रेमी भक्तों के हाथ बिक चुका हूँ । श्रुतदेव ! मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ । मिथिलेश ! मैं तुम्हारे साथ भी चलता हूँ ।''

दोनों के भावों को जानकर श्रीकृष्ण ने एक रूप से अनेक रूप बनाने की विद्या का उपयोग किया । एक ही समय में दोनों को प्रतीत हुआ कि

'श्रीकृष्ण मेरे साथ चल रहे हैं !'

श्रीकृष्ण केवल दो ही जगह नहीं, वरन् सभी जगह एक साथ पहुँचने में सक्षम हैं। सभी दिलों में एक साथ प्रगट होने में समर्थ हैं। **कर्षति आकर्षति इति कृष्णः।** जो कर्षित कर दे, आकर्षित कर दे वह आत्मदेव कहीं भी, किसी भी रूप में प्रगट हो सकता है।

राजा बहुलाश्व भगवान श्रीकृष्ण को अपने विशाल राजमहल में ले आये जिसे साफ-सुथरा करके गौझरण आदि का छिड़काव करके शुद्ध किया गया था। श्रुतदेव भी अपनी साफ-सुथरी और सजी हुई पर्णकुटीर में भगवान को ले आये। जैसे शबरी रोज भगवान श्रीराम के लिए अपनी पर्णकुटी को सजाकर रखती थी, वैसे ही श्रुतदेव ने भी अपनी पर्णकुटी को सजाया था।

मिथिलावंशी राजा बहुलाश्व ने श्रीकृष्ण को सिंहासन पर एवं उनके साथ आये ऋषि-मुनियों को भी पवित्र आसन पर बैठाया। श्रुतदेव ने भी चटाई, पीढ़े और कुशासन बिछाकर श्रीकृष्ण समेत सब ऋषियों का स्वागत-सत्कार किया।

श्रीकृष्ण को अपने बीच पाकर बहुलाश्व भी आह्लादित हो रहे हैं और श्रुतदेव भी...

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

''श्रुतदेव ! ऋषि-मुनि अपनी चरणरज से भूमंडल को पावन करते हैं और जग में मेरी भक्ति का दान करते हैं। मैं तो इनका ऋणी हूँ। पहले इनका पूजन करो। इनके पूजन से मेरा पूजन हो जाता है। इनके सम्मान से मुझ विश्वात्मा का सम्मान हो जाता है।

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया॥

'देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो दर्शन, स्पर्श, अर्चन आदि से धीरे-धीरे बहुत दिनों में पवित्र करते हैं परंतु संतपुरुष अपनी दृष्टिमात्र से ही सबको पवित्र कर देते हैं। यही नहीं, इन तीर्थ और देवता आदि में भी पवित्र करने का जो सामर्थ्य है वह भी उन्हें संतों से प्राप्त होता है।'

(श्रीमद्भागवत : १०.८६.५२)

ऐसे संत तुम्हारे घर पधारे हैं। तुम बड़भागी हो। तुम मेरा पूजन क्या करते हो ?''

कैसी है संतों की, भक्तों की महिमा कि जिसका वर्णन श्रीकृष्ण स्वयं अपने श्रीमुख से करते हैं ! धनभागी हैं वे, जिन्हें ऐसे संतों के दर्शन-सत्संग का लाभ मिलता है। बड़े भाग्यशाली हैं वे जो ऐसे संतों के द्वार पर जा पाते हैं, उनकी यत्किंचित् सेवा कर पाते हैं और धन्य है यह भारतभूमि, जहाँ ऐसे आत्मारामी संत अवतरित होते रहते हैं... बड़भागी हैं वे साधक जो संत और समाज के बीच सेतु बनने का सुअवसर खोज लेते हैं।

*

महत्त्वपूर्ण छः बातें

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

कई लोग कहते हैं कि माला करते-करते नींद आने लगती है तो क्या करें ? सतत माला नहीं होती तो आप सेवा करें, सत्शास्त्र पढ़ें । मन बहुआयामी है तो उसको बहुत प्रकार की युक्तियों से सँभाल के चलाना चाहिए । कभी जप किया, कभी ध्यान किया, कभी स्मरण किया, कभी सेवा की इस प्रकार की सत्प्रवृत्तियों में मन को लगाये रखना चाहिए ।

साधक यदि कुछ बातों को अपनाये तो साधना में बहुत जल्दी प्रगति कर सकता है ।

पहली बात है - व्यर्थ की बातों में समय न गवाये । व्यर्थ की बातें करेंगे, सुनेंगे तो जगत की सत्यता दृढ़ होगी जिससे राग-द्वेष की वृद्धि होगी और राग-द्वेष से चित्त मलिन होगा । अतः राग-द्वेष से प्रेरित होकर कर्म न करें ।

सेवाकार्य तो करें लेकिन राग-द्वेष से प्रेरित होकर नहीं, अपितु दूसरे को मान देकर, दूसरे को विश्वास में लेकर सेवाकार्य करने से सेवा भी अच्छी तरह से होती है और साधक की योग्यता भी निखरती है । भगवान श्रीरामचंद्रजी औरों को मान देते और आप अमानी रहते थे । राग-द्वेष में शक्ति का व्यय न हो इसकी सावधानी रखते थे ।

दूसरी बात है - अपना उद्देश्य ऊँचा रखें । भगवान शंकर के श्वसुर दक्ष प्रजापति को देवता लोग तक नमस्कार करते थे । ऋषि-मुनि भी उनकी प्रशंसा करते थे । सब लोकपालों में वे वरिष्ठ थे । एक बार देवताओं की सभा में दक्ष प्रजापति के जाने पर अन्य देवों ने खड़े होकर उनका सम्मान किया लेकिन शिवजी उठकर खड़े नहीं हुए तो दक्ष को बुरा लग गया कि दामाद होने पर भी शिवजी ने उनका सम्मान क्यों नहीं किया ?

इस बात से नाराज हो शिवजी को नीचा दिखाने के लिए दक्ष प्रजापति ने यज्ञ करवाया । यज्ञ में अन्य सब देवताओं के लिए आसन रखे गये लेकिन शिवजी के लिए कोई आसन न रखा गया । यज्ञ करना तो बढ़िया है लेकिन यज्ञ का उद्देश्य शिवजी को नीचा दिखाने का था तो उस यज्ञ का ध्वंस हुआ एवं दक्ष प्रजापति की गरदन कटी । बाद में शिवजी की कृपा से बकरे की गरदन उनको लगाई गयी ।

अतः अपना उद्देश्य सदैव ऊँचा रखें ।

तीसरी बात है - जो कार्य करें उसे कुशलता से पूर्ण करें । ऐसा नहीं कि कोई विघ्न आया और काम छोड़ दिया । यह कायरता नहीं होनी चाहिए । **योगः कर्मसु कौशलम् ।** योग वही है जो कर्म में कुशलता लाये ।

चौथी बात है - कर्म तो करें लेकिन कर्त्तापने का गर्व न आये और लापरवाही से कर्म बिगड़े नहीं, इसकी सावधानी रखें । सबके भीतर बहुत सारी ईश्वरीय संपदा है । उस संपदा को पाने के लिए सावधान रहना चाहिए, सतर्क रहना चाहिए ।

पाँचवीं बात है - जीवन में केवल ईश्वर को महत्त्व दें । सबमें कुछ-न-कुछ गुण-दोष होते ही हैं । ज्यों-ज्यों साधक संसार को महत्त्व देगा त्यों-त्यों दोष बढ़ते जायेंगे और ज्यों-ज्यों ईश्वर को महत्त्व देगा त्यों-त्यों सद्गुण बढ़ते जायेंगे ।

छठी बात है - साधक का व्यवहार पवित्र होना चाहिए, हृदय पवित्र होना चाहिए । लोगों के लिए उसका जीवन ही आदर्श बन जाय, ऐसा पवित्र उसका आचरण होना चाहिए ।

इन छः बातों को अपने जीवन में अपनाकर साधक अपने लक्ष्य को पाने में अवश्य कामयाब हो सकता है । अतः लक्ष्य ऊँचा हो । मुख्य कार्य और अवान्तर कार्य भी उसके अनुरूप हों ।

✲

मानव-जीवन के बीस दोष

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

महाभारत के अनुशासन पर्व में देवगुरु बृहस्पति एवं धर्मराज युधिष्ठिर का संवाद आता है। धर्मराज युधिष्ठिर के पूछने पर धर्मशास्त्रज्ञ, संयममूर्ति, देवों से पूजित, देवगुरु बृहस्पतिजी जीव के दोषों एवं उनकी गति का वर्णन करते हुए कहते हैं :

(१) जो ब्राह्मण चारों वेदों का अध्ययन करने के बाद भी मोहवश पतित व्यक्ति का दान लेता है, वह १५ वर्ष तक गधे की योनि में रहकर ७ वर्ष तक बैल बनता है। बैल का शरीर छूटने पर ३ मास तक ब्रह्मराक्षस होता है।

(२) जो ब्राह्मण पतित पुरुष का यज्ञ कराता है, वह मरने के बाद १५ वर्ष कीड़ा बनता है। फिर ५ वर्ष गधा, ५ वर्ष शूकर, ५ वर्ष मुर्गा, ५ वर्ष सियार और १ वर्ष कुत्ता होता है।

(३) धर्मराज युधिष्ठिर हाथ जोड़कर नम्रता से प्रश्न करते हैं : ''हे देवगुरु बृहस्पतिजी ! जो शिष्य मूर्खतावश गुरु का अपराध करता है, गुरु हित चाहते हैं फिर भी गुरु की बात को महत्त्व नहीं देता है और अपने मान-अपमान को पकड़कर, गुरु के कहने का सीधा अर्थ नहीं लेता है उसकी क्या गति होती है ?''

बृहस्पतिजी बोले : ''इस अपराध से वह मरने के बाद कुत्ते की योनि में जाता है और भौं-भौं करता रहता है, बकवास करता है। गुरु अपने हित की बात बतायें और वह सफाई देता है तो देता रहे... रातभर भौंकता रहे, ऐसी कुत्ते की योनि उसे मिलती है। उसके बाद राक्षस एवं गधे की योनि में भटकता है, फिर प्रेत-योनि में भटकता है। इस प्रकार अनेक कष्ट भुगतने के बाद उसे मनुष्य-योनि मिलती है।''

(४) जो शिष्य मूर्खतावश गुरु की बात का अनादर करता है उसको पशु-योनि मिलती है और हिंसक मनुष्यों के बाण सहने पड़ते हैं। गुरु हित की बात करें और शिष्य न सुने तो फिर वह ऐसी पाशवी नीच योनियों में जायेगा कि दुःख-पीड़ा सहेगा, मरेगा-जन्मेगा और अन्य पशुओं से, शिकारियों से शोषित होगा ...

(५) जो पुत्र अपने माता-पिता का अनादर करता है वह भी मरने के बाद पहले १० साल तक गधे का शरीर पाता है। फिर १ साल तक घड़ियाल की योनि में रहने के बाद मानव-योनि का अवसर पाता है।

(६) जिस पुत्र पर माता-पिता रुष्ट हों, उसकी क्या गति होती है ? वह मरकर १० मास तक गधे की योनि में, १४ महीने तक कुत्ते की योनि में और ७ माह तक बिलाव की योनि में भटककर फिर मनुष्य होने का अवसर पाता है।

(७) जो व्यक्ति माता-पिता को गाली देता है, तू कहकर बुलाता है - 'ऐ बुढ़िया ! तू चुप रह। ऐ बुड्ढे ! तू चुप रह। तू क्या जाने ?' ऐसा व्यक्ति मरने के बाद मैना बनता है।

(८) जो माता-पिता को मारता है वह १० वर्ष तक कछुआ होता है। वैसे तो कछुए की आयु लंबी होती है लेकिन वह १० वर्ष तक कछुआ रहकर मर जाता है फिर ३ वर्ष तक साही और ६ महीने तक सर्प होता है।

(९) जो किसी राजा का सेवक होते हुए भी मोहवश राजा के शत्रुओं की सेवा करता है अथवा जो गुरु का सेवक है लेकिन गुरु की सेवा के बहाने उनकी अवहेलना करके उनके उपदेश के विपरीत काम करता है, वह मरने के बाद १० वर्ष तक वानर, ५ वर्ष तक चूहा और ६ महीने तक कुत्ता होकर फिर मनुष्य-शरीर को पाता है।

(१०) दूसरों की धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य यमलोक में जाता है और क्रमशः सौ योनियों में

भ्रमण करके अंत में १५ वर्ष तक कीड़ा होता है।

(११) जो दूसरों के दोष देखता है और एक-दूसरे को भिड़ाता रहता है वह हिरन की योनि में जन्म लेता है।

(१२) दूसरों से विश्वासघात करनेवाला ८ वर्ष तक मछली की योनि में भटकता है, ४ मास तक मृग बनता है, १ वर्ष तक बकरा होने के बाद कीड़े की योनि में जन्म लेता है। इस प्रकार की नीच योनियों को भोगने के बाद उसे मनुष्य-योनि मिलती है।

(१३) जो अनाज चुराता है वह मरने के बाद पहले चूहा बनता है। फिर गोदाम में से अनाज चुराते रहो और बिल में ले जाओ... । चूहे की योनि के बाद सुअर की योनि पाता है। वह सुअर जन्म लेते ही रोग से मर जाता है। फिर ५ वर्ष तक कुत्ता होने के पश्चात् वह मनुष्य-जन्म पाता है।

(१४) परस्त्रीगमन का पाप करके मनुष्य क्रमशः भेड़िया, कुत्ता, सियार, गीध, साँप, कंक (सफेद चील) और बगुला होता है।

(१५) जो भाई की स्त्री के साथ व्यभिचार करता है, वह १ वर्ष तक कोयल की योनि में पड़ा रहता है।

(१६) जो मित्र, गुरु और राजा की पत्नी के साथ कुकर्म करता है वह ५ वर्ष तक सुअर, १० वर्ष तक भेड़िया, ५ वर्ष तक बिलाव, १० वर्ष तक मुर्गा, ३ महीने तक चींटी और १४ महीने तक कीड़े की योनि में रहता है। ऐसे करते-कराते फिर मनुष्य-योनि में आने का वह अवसर पाता है।

(१७) जो यज्ञ, दान अथवा विवाह के शुभ वातावरण में विघ्न डालता है वह १५ वर्ष तक कीड़े की योनि में जन्म लेता है।

(१८) बड़ा भाई पिता के समान होता है। जो बड़े भाई का अनादर करता है उसे मृत्यु के बाद १ वर्ष तक क्रौंच पक्षी की योनि में रहना पड़ता है। फिर वह चीरक जाति का पक्षी होता है, उसके बाद मनुष्य- योनि में आता है।

(१९) जो कृतघ्न है अर्थात् किसीके द्वारा की गयी भलाई या उपकार को न माननेवाला, ऐसे व्यक्ति को यमलोक में बड़ी कठोर यातनाएँ मिलती हैं। उसके पश्चात् १५ वर्ष तक कीड़े की योनि में जन्मता है। फिर पशुओं के गर्भ में आकर गर्भावस्था में ही मर जाता है। इस प्रकार कई सौ बार गर्भ की यंत्रणा भोगकर फिर तिर्यग (पक्षी) योनि में जन्म लेता है। इन योनियों में बहुत वर्षों तक दुःख भोगने के पश्चात् वह फिर कछुआ होता है।

(२०) जो मानव विश्वासपूर्वक रखी हुई किसीकी धरोहर को हड़प लेता है, वह मछली की योनि में जन्म पाता है। फिर मनुष्य बनता है लेकिन उसकी आयु बहुत कम होती है । मनुष्य तो बनता है, गर्भ की पीड़ा सहता है, बचपन की मारपीट सहता है और कुछ समझने की उम्र आती है तब तक तो मर जाता है। जैसे तुम्हारी मानवीय सृष्टि में ३०७ के केस की कितनी सजा, ४२० की कितनी सजा, ११५ कलम की कितनी सजा... पहले से निर्धारित है, ऐसे ही ईश्वरीय सृष्टि का कायदा भी पहले से ही बना-बनाया है । इन कर्मजन्य, भावजन्य, विचारजन्य, संगजन्य आदि दोषों से बचने का उपाय है- सत्संग एवं भगवन्नाम-जप , जिनसे अपनी मति-गति एवं कर्म ऊँचे बन जाते हैं और ईश्वरार्पण बुद्धि से किये गये सत्कर्म नैष्कर्म सिद्धि देकर ईश्वरप्राप्ति करा देते हैं। अतः बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिए कि वे नीच कर्मों से बचें एवं ईश्वरीय आनंद ईश्वरीय सुख को पा लें और मुक्त हो जायें। नीच कर्मवाले निगुरे व्यक्ति नीच योनियों में भटकते हैं और सत्कर्म में रत सत्संगी-सन्मार्गी सत्पद को पाते हैं।

जिसके जीवन में सत्संग नहीं होगा, भगवन्नाम जप नहीं होगा, जो सावधान नहीं होगा, वह इन २० दोषों में से किसी-न-किसी दोष का शिकार बन जायेगा। चाहे विश्वासघाती बने, चाहे कृतघ्नी बने, चाहे विघ्न डालनेवाला बने, चाहे बड़े भाई का अनादर करनेवाला बने, चाहे माता-पिता का अनादर करनेवाला बने... लेकिन ईश्वर के मार्ग पर चलने से भाई, माता-पिता, कुटुंबी कोई भी रोके तो उनकी बात की अवहेलना करने से कोई पाप नहीं लगता है। इन २० दोषों से बचने हेतु सत्शास्त्र का पठन-मनन और सच्चे संतों का सत्संग सर्वोपरि है।

धनवानों की दयनीय स्थिति

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

भगवान बुद्ध कहते थे : 'हे भिक्षुको ! अनन्त जन्मों में तुमने जो आँसू बहाये वे अगर इकट्ठे कर दिये जायें तो वे सरोवर को भी मात कर दें। यह जो बड़ा पर्वत दिख रहा है, उसके आगे यदि तुम्हारे सभी जन्मों की हड्डियाँ एकत्रित की जायें तो यह पर्वत भी छोटा-सा लगेगा। तुम इतने जन्म ले चुके हो।'

और इन जन्मों के पीछे प्रयत्न क्या है ? दुःखों को हटाना और सुखों को पाना। सुबह से शाम तक, जीवन से मौत तक, जन्म से जन्मांतर तक, युग से युगांतर तक सभी जीवों की यही कोशिश है कि ऐसा सुख मिले जो कभी मिटे नहीं। यदि किसीको कहें : 'भगवान करे दो दिन के लिए आप सुखी हो जाओ, फिर मुसीबत आये।' तो वह व्यक्ति कहेगा :

'' अरे, बापूजी ! ऐसा न कहिये।''

''अच्छा, दस साल के लिए आप सुखी हो जाओ, बाद में कष्ट आये।''

''ना, ना।''

''जियो तब तक सुखी रहो, बाद में नरक मिले।''

'' ना,ना... नहीं चाहते। दुःख नहीं चाहते।''

प्राणिमात्र सुखाय प्रवृत्ति... प्राणिमात्र सुख के लिए प्रवृत्ति करता है। आप यह सिद्धांत समझ लो कि सभी सदा सुख चाहते हैं, सभी सहज में सुख चाहते हैं और सभी शाश्वत सुख चाहते हैं। मिट न जाय - ऐसा सुख चाहते हैं क्योंकि सभीका मूल उद्गम स्थान वह सच्चिदानंद, शाश्वत, अमिट आत्मा है। जब तक उसमें पूरी स्थिति नहीं हुई तब तक कितना भी कुछ कर लो, पूर्ण तृप्ति नहीं होती।

कभी न छूटे पिंड दुःखों से जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं।

इस आत्मा के ज्ञान में विश्रांति पाने की व्यवस्था को प्रभु-भजन कह दो, अल्लाह की बंदगी कह दो, गॉड की प्रेयर कह दो, साधना कह दो, ये सब एक ही हैं। सारी साधना, सारी प्रार्थना, सारी सेवा, सारे कर्मों के पीछे उद्देश्य यही है कि हम सुखी हो जायें।

'हमारा नाम हो जाय।' तो क्या दुःख चाहते हो नाम से ? ना, सुखी हो जायें। 'हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहे।' तो क्या स्वास्थ्य से दुःख चाहते हो ? ना, सुखी हो जायें। 'हमको कुछ नहीं चाहिए, हम मर जायें।' तो किसलिए ? सुखी होने के लिए।

चोर चोरी करता है तो उद्देश्य सुख होता है। साहूकार साहूकारी करता है तो उद्देश्य सुख होता है। लेकिन ये कर्म क्षणिक परिणाम देनेवाले हैं, दुःखरूपी वृक्ष की डालियों और पत्तों के समान हैं। दुःखरूपी वृक्ष के मूल को काटे बिना दुःख का अंत नहीं होता। डालियाँ कितनी भी काटो, पत्ते कितने भी तोड़ो लेकिन जब तक दुःखरूपी वृक्ष की अज्ञानरूपी जड़ है तब तक दुःखरूपी वृक्ष का अंत नहीं होता। फिर चाहे कितने ही जन्म बीत जायें...। कई जन्मों तक प्रयत्न करते-करते व्यक्ति थक जाते हैं, निराश हो जाते हैं, बुरी तरह दुःखी हो जाते हैं।

कुछ वर्ष पहले अमेरिका के आठ व्यक्तियों की सूची बनाई गयी, जो पूरी दुनिया में सबसे अधिक धनाढ्य थे, करोड़पति नहीं अरबोंपति-खरबोंपति थे। २५ साल के बाद उनकी क्या स्थिति है ? इसकी जाँच हुई। जाँच कमेटी ने बताया :

(१) दुनिया की सबसे बड़ी स्टील कंपनी के मालिक अमेरिका का चार्ल्स श्काब (Charles Schwab) कंगाल होकर मर गया।

(२) दुनिया की सबसे बड़ी गैस कंपनी के अध्यक्ष हॉवर्ड हब्सन (Howard Hubson)पागल हो गये।

(३) एक बहुत बड़े व्यापारी आर्थर कटन (Arthur Cutton) दिवालिया होकर मर गया।

(४) न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज के अध्यक्ष रिचर्ड व्हीटनी (Richard Whitney) को जेल जाना पड़ा।

(५) अमेरिका के राष्ट्रपति के कैबिनेट सदस्य अल्बर्ट फाल (Albert Fall) को जेल से इसलिए

छोड़ दिया गया ताकि वे अपने जीवन के अंतिम दिन घर पर बिता सकें।

(६) वॉल स्ट्रीट के सबसे बड़े सट्टेबाज जेसी लिवरमोर (Jessie Livermore) ने आत्महत्या कर ली ।

(७) संसार के सबसे बड़े एकाधिकार बाजार (Monopoly Market) के अध्यक्ष ईवार क्रूगर (Ivar Krueger) ने आत्महत्या कर ली थी।

(८) बैंक ऑफ इंटरनेशनल सैटलमैंट के अध्यक्ष लीयोन फ्रेजर (Leon Fraser) ने भी आत्महत्या कर ली थी।

ऐसे ही जो पच्चीस साल पहले के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, अध्यक्ष रहे होंगे उनकी अभी क्या स्थिति होगी ?

क्या करिये क्या जोड़िये, थोड़े जीवन काज।
छोड़ी-छोड़ी सब जात हैं, देह गेह धनराज ॥

२५ वर्ष पहले जो धनाढ्यों की सूची में थे, २५ साल बाद उनकी स्थिति क्या रही ? धन के ऊँचे शिखरों ने भी उन्हें पूरी संतुष्टि, पूरी तृप्ति और पूरी प्रीति नहीं दी।

कितनी भी संपत्ति हो, मृत्यु के समय न चाहते हुए भी बैंक के गुप्त खाते दूसरे को बताने पड़ते हैं, छिपाकर रखी हुई संपत्ति किसीको बताकर जाना पड़ता है, नहीं तो, प्रेत होकर भटकना पड़ता है।

मुसोलिनी सन् १९४२ की लड़ाई में बुरी तरह हार गया। किसी तरह जान बचाकर स्वीटज़रलैंड की प्रेयसी के साथ ट्रक में छुपकर इटली से स्वीटज़रलैंड की तरफ भागा। लेकिन रास्ते में पकड़ा गया। धड़... धड़... धड़...गोलियाँ चलीं। दोनों मारे गये और दोनों की लाश वापस लायी गयी। जूतों के हार पड़े, बुरी तरह उनका अंतिम संस्कार हुआ।

लेकिन हीरे-जवाहरात और विदेशी करेंसी से भरी ट्रक... लाख नहीं, करोड़ नहीं, अरब नहीं, खरब के मूल्य की वह ट्रक कहाँ गयी ? कई जाँच समितियाँ बैठीं, कई सरकारें आयीं और नाक रगड़कर बैठ गयीं । आज तक उसका पता नहीं चला... १९४२ से २००१, कुल ५९ वर्ष हो गये।

जाँच समिति ने देखा कि गाड़ी खाली कैसे हो गयी ? क्या पुलिस के केवल दो जवान पूरी गाड़ी हड़प कर गये ? नहीं, वे भी वहाँ मरे हुए पाये गये। ट्रक ड्राईवर भी मरा हुआ !

इस मामले की जाँच करने हेतु कमेटियों की नियुक्ति करते गये। कमेटियों पे कमेटियाँ विफल होती गयीं। उसके वरिष्ठ अधिकारियों में से कोई पागल हो जाता था तो कोई अपने-आप बाथरूम में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लेता... १, २, ३... करते-करते ७२ वरिष्ठ अधिकारी मर गये !

एक बार मध्यरात्रि को एक वरिष्ठ अधिकारी ने देखा : 'मुसोलिनी घूम रहा है !'

अधिकारी ने कहा : ''अरे, मुसोलिन तू यहाँ ?''

मुसोलिनी का प्रेत हँसा : ''हा, हा, हा... मेरा शरीर मर गया लेकिन मेरी वासना नहीं मरी है। मैं संपत्ति सँभालूँगा, तुम क्या करोगे ?''

७२ अधिकारियों की बलि ले ली और वह मुसोलिनी अभी-भी प्रेत होकर भटकता होगा या नहीं, वह मुझे पता नहीं है। लेकिन उस संपत्ति का अभी तक पता नहीं चला।

जो बाहर से संतुष्ट होना चाहते हैं, बाहर से तृप्त होना चाहते हैं, वे कैसे भी क्रूर कर्म करें लेकिन अतृप्त ही रह जाते हैं।

अमेरिका के अखबारों से पता चलता है कि अभी भी 'व्हाईट हाऊस' में कभी-कभी अब्राहम लिंकन की प्रेतात्मा दिखाई देती है। मानवतावादी लिंकन ऊँची योग्यता के धनी तो थे परंतु ऊँचे-में-ऊँचा आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार का रास्ता पकड़ा होता तो वे भी कृष्ण, बुद्ध, कबीर की नाँई आत्मानुभव पाते।

ऐ गाफिल ! न समझा था, मिला था तन रतन तुझको।
मिलाया खाक में तूने, ऐ सजन ! क्या कहूँ तुझको ?
अपनी वजूदी हस्ती में, तू इतना भूल मस्ताना...
करना था किया वो न, लगी उलटी लगन तुझको।

जो करना था, जहाँ पूर्ण संतुष्टि थी, पूर्ण तृप्ति थी वहाँ तू न गया।

पूर्ण संतुष्ट तो केवल वे ही हैं जिन्होंने अपने स्वरूप को जान लिया है, जिन्होंने आत्मरति, आत्मप्रीति और आत्मसंतुष्टि को पा लिया है। और यह मिलती है सत्संग से, संत-शरण में जाने से, संतों द्वारा बताये गये मार्ग का अनुशरण करने से...

*

तीर्थ कैसे बने ?

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

तीर्थ कैसे बने ? भगवान या भगवान के प्यारों के निवास के कारण ही तीर्थ बने हैं। जहाँ भगवान या भगवान के प्यारे संत निवास करते हैं वह भूमि तीर्थ हो जाती है।

राजा विक्रमादित्य से पूर्व अयोध्या के तीर्थ का पता नहीं था। राजा विक्रमादित्य युद्ध करके लौट रहे थे तब किसी योगी ने उन्हें बताया : 'यह इलाका भगवान श्रीराम के पदचिह्नों का है। विक्रमादित्य ! तुम धर्मात्मा हो, तनिक शांत होकर यहाँ बैठो। जहाँ-जहाँ तुम्हें स्फुरणा हो, वहीं-वहीं भगवान का प्रागट्य स्थल, भगवान का लीलास्थल, भगवान की पाठशाला आदि मिलेगी।'

तब विक्रमादित्य ने खोजा कि कौन-सी जगह पर श्रीरामजी अवतरित हुए, किन स्थलों पर लीलाएँ कीं। उसके बाद अयोध्या के तीर्थ का निर्माण हुआ।

चैतन्य महाप्रभु के पहले वृंदावन के तीर्थ का लोगों को विशेष पता नहीं था। गौरांग ने अपने शिष्यों सनातन एवं रूप गोसाईं को वहाँ भेजा। उनका हृदय शुद्ध था। उनके हृदय में जहाँ-जहाँ स्फुरण हुआ कि 'यहाँ भगवान ने चीरहरण किया था, यहाँ मिट्टी खायी थी, यहाँ ऊखल-बंधन हुआ था, यहाँ रास हुआ था...।' वहीं-वहीं उन तीर्थों की स्थापना हुई।

वल्लभाचार्यजी बताते हैं कि वृंदावन परसोली ग्राम के करीब था। उनका कहना भी सही है एवं चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों का कहना भी सही है क्योंकि किसी युग में वृंदावन परसोली गाँव में था और इस युग का वृंदावन अभी जहाँ कहा गया है, वहाँ है।

आद्यशंकराचार्यजी से पहले बद्रीनाथजी की मूर्ति का पता नहीं था। पंडितों ने उनसे प्रार्थना की तब शंकराचार्यजी ने नारद कुंड में गोता मारकर बद्रीनाथजी की मूर्ति निकाली। तब बद्रीनाथजी के तीर्थ की स्थापना हुई।

जितने भी तीर्थ हैं वे सब उन्हीं महापुरुषों के तप से, प्रेरणा से बने हैं, जिन्होंने आत्मतीर्थ में गोता मारा है। इसीलिए जैनधर्म उन्हें तीर्थंकर कहता है।

आप भी अपने घर में एकाध कमरे को तीर्थ बना दें। जहाँ हरि का चिंतन होता है, जहाँ परमात्मा का जप-ध्यान होता है वह भूमि तीर्थ बन जाती है। जो हृदय हरि का चिंतन करता है वह हृदय तीर्थ हो जाता है। ऐसा तीर्थरूपी हृदयवाला साधक जिस घर में, जिस कमरे में ध्यान-भजन करता है, वह घर, वह कमरा भी तीर्थत्व को प्राप्त हो जाता है। अतः, मैं भी आपको यही शुभकामना एवं सत्प्रेरणा देना चाहता हूँ कि आप भी संतों की सीख मानकर अपने हृदय को तीर्थ बना दीजिये।

एक बार वैष्णवों और शैवों में झगड़ा हो गया। शैवों ने कहा : 'भगवान शंकर कैलासपति हैं और यहाँ से कैलास जाया जाता है। इसीलिए इस जगह का नाम है - हरद्वार, हर+द्वार अर्थात् महादेव का द्वार।'

वैष्णवों ने कहा : 'पागल हुए हो ? भगवान बद्रीनाथ के मंदिर में जाना हो तो यहाँ से जाया जाता है। इसलिए इस जगह का नाम है - हरिद्वार, हरि+द्वार अर्थात् विष्णु का द्वार।'

शैव : 'चुप करो। हरिद्वार मत कहो, हरद्वार कहो।'

वैष्णव : 'हरद्वार नहीं, हरिद्वार कहो।'

कभी-कभी भक्तों में अड़ियल दुनियादार भी घुस जाते हैं। किसीने शैवों को भड़काया और किसीने वैष्णवों को भड़काया। दोनों में झगड़ा हो गया। आखिर मुकदमा चला कि सरकार निर्णय करे कि 'हरिद्वार' है कि 'हरद्वार' है ?

लोगों को हुआ कि पता नहीं ब्रिटिश सरकार हिन्दू धर्म के तीर्थ के लिए क्या निर्णय करेगी ?

कई पेशियाँ पड़ीं। आखिर में अंग्रेज न्यायाधीश

ने निर्णय दिया : 'हरिद्वार भी नहीं और हरद्वार भी नहीं । यहाँ हिन्दू लोग अपने माता-पिता की हड्डियाँ डालते हैं इसलिए इसका नाम 'हड्डीद्वार' होगा।'

यह नाम और निर्णय सरकारी फाइलों में धरा रह गया, सड़ रहा है । पक्षपाती अंग्रेज न्यायाधीश का काला मुँह करके यह आदेश फाइल में ही धरा रह गया। अभी भी लोग 'हड्डीद्वार' नहीं हरिद्वार या हरद्वार ही कहते हैं।

कुछ बाह्यतीर्थ हैं, कुछ आभ्यांतर तीर्थ हैं। जैसे, गंगाजी, यमुनाजी, गोदावरीजी आदि के तट पर स्थित जो तीर्थ हैं वे धरती के उन स्थानों पर हैं, जहाँ विशेष चैतन्य के प्रभाव के परमाणु हैं । जैसे, शरीर में कुछ अंग मलिन होते हैं और कुछ अंग उत्तम होते हैं। नीचे के अंगों पर या पैर पर हाथ लग जाय तो हाथ धोना चाहिए लेकिन ललाट पर उँगली लग गयी तो हाथ धोने की जरूरत नहीं पड़ती है । ऐसे ही पृथ्वीरूपी शरीर पर कुछ विशेष चैतन्य के प्रभाव के परमाणु हैं वे बाह्यतीर्थ कहलाते हैं।

आत्मज्ञानरूपी रस और आत्ममाधुर्यरूपी भाव में जो नहाते हैं वे तीर्थों को तीर्थत्व देनेवाले होते हैं।

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि।

जिन्होंने मन-इंद्रियों पर अनुशासन करके आत्मिक यात्रा की और अंदर का वैदिक अनुभव प्राप्त करके जो कुछ कहा, वही शास्त्र बन गये।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवंतिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

इन सातों स्थानों की भूमि में विशेष परमाणु हैं। इसीलिए वहाँ जानेवालों को थोड़ा-सा ही जप-तप करने से आनंद और शांति की प्राप्ति होती है। ऐसे ही जहाँ जप-तप-ध्यान-भजन होता है और आत्मतीर्थ में नहाये हुए कोई महापुरुष मिलते हैं तो ऐसे स्थल अंतर के तीर्थ हैं, आभ्यांतर तीर्थ हैं।

कुछ स्थावर तीर्थ होते हैं, कुछ जंगम तीर्थ होते हैं। जैसे, गंगा, यमुना ये स्थावर तीर्थ हैं। ऐसे पुरुष जो आत्मगंगा, आत्मतीर्थ में नहाते हैं जंगम तीर्थ हैं, चलते-फिरते तीर्थ हैं।

कुछ लोग मानते हैं कि 'चलो, कुंभ में गये, नहाये, पुण्य हुआ... तीर्थ में गये, बढ़िया हो गया...' यह सब ठीक है । लेकिन यदि आत्मतीर्थ में नहीं आये तो इन तीर्थों के आस-पास रहनेवालों के हाल जरा देख लो। तीर्थ में जाना पुण्यकर्म तो है लेकिन जो आत्मतीर्थ में नहीं नहाते हैं, उन्हें शास्त्र सावधान करते हैं। शास्त्र कहते हैं :

ज्ञानो अमृतो न तृप्तस्य कृतकृतश्च योगिनाः ।
नैवस्ति किंचित् कर्त्तव्यस्ति चेतसा तत्परितः ॥

'जो पुरुष ज्ञानरूपी अमृत से तृप्त हैं और कृतकृत्य हैं उन्हें किंचित् भी कर्त्तव्य नहीं है। यदि वे अपने में कर्त्तव्य मानते हैं तो वे तत्त्ववेत्ता नहीं हैं।'

इदं तीर्थं इदं तीर्थम् भ्राम्येति तामसाजनाः ।
आत्मतीर्थम् न जानन्ति कथं मोक्ष जितयेः ॥

'कपिल गीता' का यह श्लोक एकदम ऊँचा, तात्त्विक ज्ञान की तरफ संकेत करनेवाला है। 'इस तीर्थ में चलो, उस तीर्थ में चलो...' ऐसा तामसी और राजसी सुख में उलझे हुए लोग ही बोलते हैं। इन तीर्थों में, आत्मतीर्थ में आने के लिए ही जाया जाता है।

कभी जाये केदार कभी जाये मक्के।
आत्मतीर्थ में नहीं आया तो खा ले दर-दर के धक्के ॥

इदं तीर्थं इदं तीर्थं... 'यह तीर्थ है, वह तीर्थ है' - ऐसा करके अज्ञानी जीव घूमते-फिरते रहते हैं क्योंकि वे आत्मतीर्थ को नहीं जानते हैं।

जिस पुरुष की अपने आत्मा में ही प्रीति है और जो अपने आत्मा में ही तृप्त हैं, संतुष्ट हैं, उनके लिए कोई कर्त्तव्य नहीं है।

लोग मृत्यु के समय काशी जाना पसंद करते हैं लेकिन आत्मतीर्थ में पहुँचे हुए कबीरजी ने कहा :

''ऐसा कहा जाता है कि मगहर में मरनेवाला सुअर बनता है। क्या उस स्थान का इतना प्रभाव है कि वह मेरे आत्मा-परमात्मा के आत्यंतिक सुख, आत्मज्ञान को छीन लेगा ? नहीं छीन सकता।''

कबीरजी मरने के लिए मगहर में गये। कबीरजी जैसा दृढ़ बोध जिनको हो जाता है वे ही तृप्त रहते हैं। बाकी के लोग तो कहते हैं : 'मुझे तीर्थ में ले जाओ, मुझे गंगाजल पिलाओ।' ऐसा कहना ठीक है, उचित है, लेकिन जिनको ब्रह्मज्ञान हो गया है वे गंगाजल पीयें यह कोई जरूरी नहीं है। वे तो जिस जल को छू दें, वही गंगाजल है और जहाँ चरण रख दें वहीं तीर्थ हैं। आत्मतीर्थ की ऐसी दिव्य महिमा है।

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सम्राट अशोक की सेवापरायणता

सम्राट अशोक के राज्य में अकाल पड़ा। सम्राट ने राज्य में कई सदाव्रत खुलवा दिये ताकि प्रजा में जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो वे अपने लिए निःशुल्क सीधा-सामान ले जायें।

एक दिन सदाव्रत में लंबी कतार पूरी होने पर शरीर से दुर्बल एवं वृद्ध व्यक्ति आया। सदाव्रतवालों ने कहा : ''अब हम सदाव्रत बंद कर रहे हैं। कल आना।''

इतने में एक युवक ने आकर कहा : ''लंबी कतार में खड़े रहने की शक्ति न होने से यह वृद्ध छाया में दूर बैठा था। तुम इसको सीधा-सामान दे दो तो अच्छा होगा।''

युवक की प्रभावशाली वाणी सुनकर सदाव्रतवालों ने उस वृद्ध को सीधा-सामान दे दिया। पाँच-दस सेर जितना आटा, दाल, चावल आदि सामान की गठरी बाँधकर वह वृद्ध कैसे ले जाता ? उस युवक ने गठरी बाँधी और अपने सिर पर रख ली एवं वृद्ध के साथ चलने लगा।

दोनों कुछ आगे बढ़े होंगे कि इतने में सामने से सेना कि एक टुकड़ी आयी। टुकड़ी के नायक ने घोड़े से उतरकर वृद्ध के साथ चल रहे युवक का अभिवादन किया। यह देखकर वृद्ध चौंक उठा और सोचने लगा कि 'यह युवक कौन है ?' युवक ने टुकड़ी के नायक को संकेत से अपना परिचय देने के लिए मना कर दिया।

वह वृद्ध भी अनुभवसंपन्न था, जमाने का खाया हुआ था। वह समझ गया कि मेरे साथ जो युवक है वह कोई साधारण आदमी नहीं है। अतः, उसने स्वयं ही युवक से परिचय पूछा :

''युवक ! तुम कौन हो ?''

युवक : ''आप वृद्ध हैं और मैं युवक हूँ। आपका शरीर दुर्बल है और मेरे शरीर में बल है। मुझे सेवा का अवसर मिला है। उसका लाभ उठा रहा हूँ। बस, इतना ही परिचय काफी है।''

लेकिन वह वृद्ध भला कैसे चुप रहता ? उस युवक को एकटक देखते-देखते उसने युवक का हाथ पकड़ लिया और अधिकारपूर्ण वाणी में कहा : ''तुम और कोई नहीं वरन् इस देश के सम्राट अशोक हो न !'' सम्राट अशोक ने हाँ भर दी।

जो निष्काम कर्म करते हैं और यश नहीं चाहते, यश-कीर्ति तो उनके इर्द-गिर्द ही मँडराती रहती है। इसलिए सेवा, विनम्रता, दया और करुणा जैसे सद्गुणों को अपनाकर अपना जीवन तो उन्नत करना ही चाहिए एवं औरों के लिए भी आपका जीवन पथ-प्रदर्शक बन सके - ऐसा प्रयास करना चाहिए।

✲

शासक को पुरस्कार

भारत के चक्रवर्ती सम्राट अशोक का जन्म-दिवस था। जन्मदिवस पर चारों दिशाओं से आये हुए अपने शासकों से अशोक ने समाचार पूछे।

पूर्वी दिशा से आये हुए शासक ने कहा :

''महाराज की जय हो। हमने अपनी सेना दुगनी कर ली है और ऐसा कड़ा प्रबंध किया है कि राज्य के विरोधी अब हमारी ओर आँख तक उठाकर नहीं देख सकते।''

उत्तर दिशा के शासक ने कहा :

''सम्राट के जन्मदिवस पर कोटि-कोटि बधाइयाँ। महाराज खूब जियें। शुभ समाचार यह है कि उत्तरी शासन की आय तिगुनी हो गयी है। सम्राट के खजाने में अब तिगुनी संपत्ति भेजी जा सकेगी।''

दक्षिण दिशा के शासक ने कहा :

''महाराज की जय हो। दक्षिणी शासन की ओर से दुगना सोना भेजा जा सकेगा।''

पश्चिम दिशा के मगध के शासक ने कहा :

''महाराज ! क्षमा करें । आपके राज्य में इस साल हम आय भेज पायेंगे अथवा नहीं, इसमें संदेह है क्योंकि हमने प्रजा पर से कर का बोझ कम कर दिया है और जो रिश्वत लेकर गुजारा करते थे उन अधिकारियों की आवश्यकता देखकर उनका वेतन बढ़ा दिया है। महाराज ! हमने पाठशालाएँ खुलवायी हैं। नगरजनों के बच्चों को उचित शिक्षा मिल सके एवं वे पढ़ाई में कमजोर न रह जायें इसके लिए ईमानदार अधिकारियों की नियुक्ति कर दी है ।

इसके अलावा हमने अलग-अलग स्थानों पर कुएँ, बावड़ियाँ, धर्मशालाएँ आदि बनवायीं हैं । इन सबमें हमने राज्य का धन खर्च कर दिया है । महाराज ! हमारे यहाँ आवश्यकतानुसार खर्च करने के उपरांत धन बचेगा तो आपके यहाँ भेजेंगे। महाराज ! फिर जैसी आपकी आज्ञा ।''

सम्राट अपने सिंहासन से उठ खड़े हुए एवं बोले : ''आज मेरे जन्मदिवस पर पुरस्कार किसे दिया जाय ? क्या मेरे खजाने में तीनगुनी संपदा जमा करनेवाले को ? क्या दुगना सोना भेजनेवाले को अथवा सैन्यशक्ति बढ़ानेवाले को ? नहीं । मानवता की शक्ति, शांति और माधुर्य बढ़ानेवाले इस सत्पात्र मगध शासक का मैं जितना भी आदर करूँ, मुझे कम लगता है ।

आओ मित्र ! गले लगो । संकोच छोड़ो, इस पुरस्कार से अन्य शासकों को प्रेरणा मिलेगी कि शासक कैसा होना चाहिए। मेरे पवित्र सिद्धांतों पर चलनेवाले पवित्रात्मा मेरे ही स्वरूप हैं ।''

शिवाजी की दयालुता

[शिवाजी जयंती : १९ फरवरी २००२]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

छत्रपति शिवाजी समर्थ श्रीरामदासजी के श्रीचरणों में जाते थे । दरबारी के बेटे शिवाजी ने समर्थ की कृपा से मुट्ठीभर मराठों को लेकर तोरण का किला जीत लिया । इसके अलावा उन्होंने कई मुगलों को भी हराया । मुगलों की नाक में दम ला दिया था शिवाजी ने...

औरंगजेब ने देखा कि शिवाजी को वश करना बड़ा मुश्किल है । यह बड़ा प्राणबलवाला व्यक्ति है । अतः, औरंगजेब ने युक्ति से काम लेते हुए समझौता करने के बहाने शिवाजी को बुलाया।

शिवाजी ने भी सोचा कि युद्ध की अपेक्षा मित्रता से जीना अच्छा है । **दोस्ती का हाथ सदा साथ...** शिवाजी अपने बेटे शंभाजी और सेनापति तानाजी तथा अन्य सहायकों को साथ लेकर दिल्ली गये ।

समझौते के बहाने दिल्ली बुलाकर औरंगजेब ने शिवाजी को जेल में बन्द कर दिया । शिवाजी ने देखा कि 'औरंगजेब ने धोखे से हमें जेल में डाल दिया है लेकिन इसमें चिंता की कोई बात नहीं ।' वे गुरुकृपा से, युक्ति से जेल से फरार हो गये ।

रात्रि को शिवाजी रास्ता तय करते और दिन को कहीं छिपकर रहते । चलते-चलते जंगल के कंटकीले रास्तों को पार करते-करते एक रात्रि को आगरा के पास सुलतानपुर के जंगल में पहुँचे । रात्रि को पानी पीने के लिए गये तो एक शेर ने उन पर

हमला कर दिया। शिवाजी बिना हथियार के शेर से जूझे एवं शेर को मार तो गिराया लेकिन शेर के पंजे ऐसे गहरे लगे कि शिवाजी के शरीर के कई अंगों से मांस बाहर निकल आया।

पीड़ित शिवाजी का इलाज बस्ती में ही हो सकता था। अतः, उन्हें बस्ती की शरण लेनी पड़ी। पास की बस्ती में वे विनायक ब्राह्मण के घर रहे। वह ब्राह्मण बड़ा गरीब था। उसकी गरीबी देखकर शिवाजी ने अपने साथियों को वहाँ से रवाना कर दिया और अकेले ही उसके घर में रहे।

एक दिन विनायक ब्राह्मण ने शिवाजी को भोजन करा दिया लेकिन स्वयं भोजन नहीं किया। शिवाजी ने पूछा : ''आपने भोजन क्यों नहीं किया ?''

विनायक ब्राह्मण पहले तो टालता रहा लेकिन बार-बार पूछने पर कहा : ''मैं गरीब ब्राह्मण हूँ। आज मुझे भिक्षा में इतना ही मिला था कि अतिथि को खिला पाता। मैं घर से दुःखी होकर इधर एकांत में रह रहा था और आपकी सेवा मिल गयी।''

शिवाजी का हृदय पसीज उठा। उनको हुआ कि 'महाराष्ट्र में होता तो इसे हीरे-मोती से तौल देता। लेकिन यह महाराष्ट्र आयेगा नहीं और भेजूँगा तो इसके हाथ पहुँचेगा भी कि नहीं क्या पता ? अगर मिल भी गया तो विनायक ब्राह्मण चुप नहीं बैठेगा और औरंगजेब इसको सतायेगा। चलो, मैं चिट्ठी ही लिख देता हूँ।'

शिवाजी ने चिट्ठी लिखी और विनायक ब्राह्मण को कहा : ''आप इसे सुलतानपुर के सूबेदार को दे आयें।''

सूबेदार को चिट्ठी मिली उसमें लिखा था : 'अगर शिवाजी की कोई खबर देगा तो उसे दो हजार रुपये इनाम मिलेगा - औरंगजेब का ऐसा ढँढ़ेरा है। तुम दो हजार रुपये ले आओ। शिवाजी विनायक ब्राह्मण के घर पर मिल जायेगा। ऐ सूबेदार के बच्चे ! अगर खाली हाथ मुझे पकड़ने आया तो तुम्हारी ऐसी की तैसी कर दूँगा।'

शिवाजी का हौसला कितना बुलंद रहा होगा ! जेल से भाग निकले हैं, शेर के दो-दो पंजे लगे हुए हैं... विपत्ति में पड़कर विनायक ब्राह्मण के यहाँ रहना पड़ रहा है... उसके यहाँ भोजन कर रहे हैं तो उसका कैसा बदला चुका रहे हैं !

सूबेदार बीस पठानों के साथ दो हजार रुपये की थैली लेकर पहुँचा और थैली देकर शिवाजी को गिरफ्तार कर लिया।

अतिथि को गिरफ्तार देखकर ब्राह्मण सिर पटक-पटककर रोने लगा। तानाजी उसके पड़ोस में छिपकर रहते थे। ब्राह्मण का रुदन सुनकर वहाँ आये तो देखा कि 'सूबेदार शिवाजी को बंदी बनाकर ले जा रहा था'

तानाजी ने विनायक ब्राह्मण से सारी बात जान ली। विनायक ब्राह्मण तानाजी से कहता है :

''आप यह दो हजार रुपये की थैली ले लो। मुझे फाँसी पर चढ़ा दो लेकिन मेरे अतिथि को बचा लो। मेरे घर से एक मुसलमान मेरे हिन्दू भाई को बंदी बनाकर ले गया। यह मैं कैसे सह सकता हूँ ?''

तानाजी : ''ना,ना। मैं यह अधर्म नहीं करूँगा लेकिन आपको पता है कि अतिथि कौन था ?''

विनायक : ''नाम तो नहीं बताया था। उन्होंने बात को गुप्त रखने का वचन लिया था तो मैं कैसे पूछता कि अतिथि कौन है ? लेकिन अतिथि मेरे देश का था, हिन्दू था।''

तानाजी ने कहा : ''आप अपना हौसला बुलंद रखें। घबरायें नहीं और भावुकता में भी न बहें। वे अतिथि थे - महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी।''

यह सुनकर ब्राह्मण के तो होश ही उड़ गये ! वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। तानाजी ने पानी छिड़ककर उसकी मूर्छा दूर की। उसको सांत्वना दी और हिम्मत बँधाई।

भाव के साथ विचार और श्रद्धा का होना अत्यंत जरूरी है। जिसके पास केवल विचार है और श्रद्धा नहीं है वह मनुष्य कहलाने के लायक ही नहीं है और जिसके पास श्रद्धा है, भाव है और विचार का आश्रय नहीं लेता है वह भाव के बहाव में ही बह जाता है।

विनायक ब्राह्मण कहता है : ''कुछ भी करो लेकिन शिवाजी को बचाओ।''

तानाजी : ''सब ठीक हो जायेगा। आप चिंता

न करें।''

तानाजी दो हजार रुपये लेकर चल दिये। सारी जानकारी एकत्रित कर ली कि सूबेदार शिवाजी को औरंगजेब के पास किस रास्ते से ले जायेगा और साथ में कितने पठान होंगे।

तानाजी को युक्ति सूझ गयी। उन्होंने पचास लड़ाकू स्वभाव के व्यक्तियों को पगार पर रख लिया। उन पचास व्यक्तियों में जोश भरकर उन्हें तैयार किया और जिस रास्ते से शिवाजी को ले जानेवाले थे, उस रास्ते में सब छिप गये।

ज्यों ही सुलतान शिवाजी को लेकर वहाँ से निकला, त्यों ही तानाजी ने पचास व्यक्तियों समेत उस पर धावा बोल दिया। तानाजी ने सुलतान समेत पच्चीस पठानों को यमपुरी पहुँचा दिया और शिवाजी को महाराष्ट्र ले गये।

कैसा व्यक्तित्व था, भारत के उस छत्रपति का ! अपनी सुरक्षा के लिए विनायक ब्राह्मण के घर रहे लेकिन देखा कि मेरे कारण ब्राह्मण को भूखा रहना पड़ा तो अपनी जान तक को जोखिम में डाल दिया ! ऐसे व्यक्ति ही इतिहास में अमर हो पाते हैं जो मानवीय संवेदना और सत्शास्त्रों की सूझ-बूझ से संपन्न हैं।

आप अपना कार्य या कर्त्तव्य करो लेकिन न उसके लिए कोई चिन्ता रहे, न ही कोई इच्छा। अपने कार्य में सुख का अनुभव करो क्योंकि आपका कार्य स्वयं सुख या विश्राम है। आपका कार्य आत्मानुभव का ही दूसरा नाम है। कार्य में लगे रहो। कार्य आपको आत्मानुभव कराता है। किसी अन्य हेतु से कार्य न करो। स्वतंत्र वृत्ति से अपने कार्य पर डट जाओ। अपने को स्वतंत्र समझो, किसीके कैदी नहीं।

(आश्रम की पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ११२वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया फरवरी २००२ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

प्रातः स्मरणीय विश्ववंदनीय
संत श्री आसारामजी महाराज की मातुश्री

पूजनीया श्री श्री माँ महँगीबा (अम्मा)

(गतांक से आगे)

जन्म एवं बाल्यकाल

हजारों-हजारों, लाखों-लाखों हृदयों को एक साथ ईश्वरीय आनंद में सराबोर करनेवाले, आत्मिक स्नेह के सागर, वेदान्तनिष्ठ सत्पुरुष पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू जिन पुण्यशाली, स्नेहमयी माता की गोद में खेले हैं, वे ही हैं हमारी चरित्रनायिका - **पूजनीया श्री माँ महँगीबा।**

माँ की महिमा का वर्णन करते हुए 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में गणेशखंड के ४०वें अध्याय में आया है :

जनको जन्मदातृत्वात् पालनाच्च पिता स्मृतः।
गरीयान् जन्मदातुश्च योऽन्नदाता पिता मुने ॥
तयो शतगुणे माता पूज्या मान्या च वन्दिता।
गर्भधारणपोषाभ्यां सा च ताभ्यां गरीयसी ॥

'जन्मदाता और पालनकर्त्ता होने के कारण सब पूज्यों में पूज्यतम जनक और पिता कहलाता है। जन्मदाता से भी अन्नदाता पिता श्रेष्ठ है। इनसे भी सौगुनी श्रेष्ठ और वंदनीया माता है क्योंकि वह गर्भधारण तथा पोषण करती है।'

इसलिए जननी एवं जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है :

जननि जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

प्रगट या अप्रगट रूप से प्रत्येक सफल

महापुरुष के पीछे किसी-न-किसी महान नारी का हाथ अवश्य रहता है, यह सभी जानते हैं।

जिस माता ने बाल्यकाल से ही पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू में आध्यात्मिकता का सिंचन किया, उन्हें ध्यान-भजन करना सिखाया, उनमें ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास जगाया, वे महान माता थीं- **परम पूजनीया श्री माँ महँगीबा।**

अविभाज्य भारत (वर्त्तमान पाकिस्तान) के टण्डेआदम शहर से २ मील की दूरी पर स्थित मीरहसनमरी नामक स्थान पर लुहाणा कौम, नुखबंद गोत्र में श्री देवड़ामलजी के सुपुत्र श्री प्रेमचंदजी के यहाँ लगभग सन् १९०८ में श्री माँ महँगीबा का जन्म हुआ था।

प्रेमचंदजी की दूसरी संतान थीं हम सबकी प्यारी-दुलारी पूजनीया अम्मा - **श्री माँ महँगीबा।** पिताजी का देहावसान इनके बाल्यकाल में ही हो गया था। पारिवारिक स्थिति अत्यंत साधारण थी। बड़ी मुश्किल से संतानों का लालन-पालन हो रहा था।

कहते हैं कि पुत्र के लक्षण पालने में ही पता चल जाते हैं। माँ महँगीबा बाल्यकाल से ही शांत, सरल स्वभाव की थीं। बाल्यकाल से ही इनके जीवन में सरलता एवं प्रत्येक परिस्थिति में समता के दर्शन होते थे। परमात्मा के प्रति इनकी सहज भक्ति-निष्ठा थी एवं ये कई व्रत एवं उपवास भी किया करती थीं। ऐसे सरल-सहज एवं निर्दोष लोगों के यहाँ ही तो महान आत्माएँ अवतरित हुआ करती हैं! 'श्रीरामचरितमानस' में भी आता है :

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

महँगीबा कभी नानाजी के पास तो कभी माँ के पास रहती थीं। इन्होंने अपने स्वभाव से नानाजी के यहाँ सभीका मन मोह लिया था।

नानाजी के यहाँ वे गायें-भैसें सँभालती, दूध-दही बिलोती, अड़ोस-पड़ोस के लोगों में छाछ बाँटतीं। बचपन से ही बाँटने में इनकी रुचि थी। आस-पास के सब लोग इन पर बड़े प्रसन्न रहते थे। नानाजी भी इनको खूब आशीर्वाद देते थे।

महँगीबा को घर पर सब प्रेम से 'ढेल' कहते थे। नानाजी कभी-कभी बड़े प्रेम से गाने लगते :

डेल मतारी, मेहुन जे वलणन वारी।
छजु सोन पाईं शाबास हुजेई जस मथां॥

नन्ही-सी महँगीबा पूछती : ''बाबा! **जस मथां** का मतलब क्या है ?''

नानाजी कहते : ''इतना सब काम करती है। तेरे को शाबास है। इन्हीं लक्षणों के कारण तेरा यश होगा।''

मामाजी कहते : ''इसकी हम शादी नहीं करवायेंगे। अगर इसकी शादी करवा देंगे तो हमारा क्या होगा ?''

उस समय बालविवाह की प्रथा थी, किन्तु इनका सहज-सरल एवं निर्दोष स्वभाव देखकर इनके नाना भी कहते : ''हम इसकी शादी जल्दी नहीं करेंगे।'' ननिहाल में कोई भी इन्हें अपने से दूर नहीं करना चाहता था। शायद इसीलिए उस जमाने में इनका काफी बड़ी उम्र (२० साल) में विवाह हुआ।

समय कब किसकी राह देखता है ? महँगीबा का बचपन भी बीत चला एवं इन्होंने यौवन की दहलीज़ पर अपने कदम रखे। इनकी उम्र १७-१८ के करीब थी। माता को बड़ी चिन्ता होने लगी... किन्तु माँ की चिंता से भी क्या हो सकता था ? विधाता के लेख को कौन टाल सकता था ?

माँ महँगीबा का विवाह

बचपन से ही माँ महँगीबा में गुरुसेवा का भाव बड़ा प्रबल था। माँ महँगीबा की माता एक बार अपने पीहर गयीं तब इनको घर पर ही छोड़ गयीं। घर पर इनके कुलगुरु यदा-कदा आते ही रहते थे। इन्होंने कुलगुरु की खूब सेवा की।

इस विषय में बताते हुए अम्मा कहती थीं : ''मेरी माँ अपनी माँ के पास गयी हुईं थीं। वहाँ से वे १६ महीने बाद आयीं। मैं कुलगुरु की बहुत सेवा करती थी। समय से उन्हें भोजन-पानी वगैरह देती थी। मेरी माँ आयीं तब गुरुजी ने कहा:

''बेराणी में मेरे सेवकों के २४ घर हैं। इसकी (अम्मा) शादी मैं अपने सेवकों के घर में

करवाऊँगा। अगर तुम वह शादी स्वीकार न करोगी तो मैं अन्न-जल का त्याग कर दूँगा।''

माँ ने मुझसे कहा : ''ऐसा कौन-सा जादू कर दिया है गुरुजी पर कि वे हठ लेकर बैठ गये हैं ?''

जिस वर के लिए गुरुजी ने विचार किया था वे थाऊमलजी नगरसेठ थे, उनके पास खेती-बाड़ी, जमीन-जायदाद भी बहुत थी लेकिन उनकी उम्र काफी हो चुकी थी। थाऊमलजी के माता-पिता दोनों न थे। दोनों बड़े भाइयों की पत्नियाँ सगी बहनें थीं एवं उनकी माँ भी उनके साथ रहती थीं। दो बहनों और उनकी माँ के बीच अपनी लड़की दुःखी रहेगी, यह सोचकर कोई भी उस घर में अपनी बेटी देने को तैयार न था।

सगाई से पहले उनका घर देखने गये तब थाऊमलजी घर पर ही थे, उन्होंने बातचीत भी की लेकिन अपना परिचय नहीं दिया। देखनेवालों ने उन्हें वर का भाई ही समझा। बाद में वर की अधिक उम्र का पता चला (अम्मा से वे १५-२० साल बड़े थे)।

पूजनीया अम्मा के विवाह के संबंध में पूज्यश्री बताते हैं : ''हमारे पिताजी बुद्धि में बड़े वरिष्ठ थे लेकिन उम्र में अपने दो भाइयों से छोटे थे। यह तो परंपरा है कि छोटा भाई बेटे के समान होता है, उसे बड़ों का आदर करना चाहिए लेकिन... हमारी दो काकियों (चाचियों) का स्वभाव बड़ा कर्कश था। अतः, मेरे पिताजी की शादी नहीं होती थी। परिवार धनी तो था लेकिन लड़के (थाऊमलजी) की भाभियाँ ऐसी थीं कि कोई अपनी कन्या उसे नहीं देना चाहता था। अपनी लड़की देकर उसे जान-बूझकर मुसीबत में क्यों डालना ?

अतः यह काम उनके कुलगुरु को करना पड़ा। उन्होंने ही कहा : 'अपनी कन्या का विवाह यहाँ करो।' कुलगुरु की बात मानकर परिवारवालों ने सिरुमलानीजी के कनिष्ठ पुत्र थाऊमलजी से महँगीबा की सगाई (मँगनी) करा दी। जब इस बात का पता दोनों पक्षों के गाँववालों को चला तो उन्हें ऐसा आश्चर्य हुआ मानों, कोई वज्रपात हो गया हो ! (क्रमशः)

यार की मौज

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

हिन्दी भाषा में जिसे हम ईश्वरीय आनंद, सच्चिदानंद कहते हैं उसे उर्दू एवं फारसी भाषा में कहते हैं : **यार की मौज**।

भारत में एक संत हो गये, जिन्होंने अपना नाम जीवनभर नहीं बताया। वे प्रत्येक परिस्थिति में केवल यही कहते थे : **'यार की मौज।'** अतः उन्हें लोग 'यार की मौज' के नाम से ही जानते थे। वे यार की मौज भी इतनी गहराई से कहते कि सुननेवाले गद्गद हो जाते थे।

सन् १९२७ से पहले **'यार की मौज'** सुरक्षा विभाग (सी.बी.आई.) में एक अधिकारी थे। उस समय के वाइसराय की पत्नी ने किसी उदासीन संत के दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। विभाग के अधिकारी होने के नाते वे भी वाइसराय की पत्नी के साथ संत के पास गये।

वाइसराय की पत्नी ने संत के आगे सोने-चाँदी के आभूषण रखे। वे संत तो विरक्त थे, बोले :

''हमारे पास कोई आश्रम अथवा ट्रस्ट नहीं है। हमें इसकी कोई जरूरत नहीं है।''

'यार की मौज' गये तो थे वाइसराय की पत्नी की सुरक्षा के नाते अधिकारी होकर लेकिन लौटे तो अधिकारी होकर नहीं... गजब हो गया ! कितनी श्रद्धा, कितना विवेक रहा होगा इस अधिकारी में कि संत-दर्शन करते-करते उनके संतत्व को अपने हृदय में झेलते गये। संत को एकटक देखते-देखते मानों, अपना अहं भूलते गये... अपना पाप-ताप

मिटाते गये... 'हमने तो भगवान को नहीं देखा लेकिन जिनके हृदय में अपने भगवद्स्वरूप का ज्ञान प्रगट हुआ है उनको देखने का मौका मिल रहा है... कितनी मंगल घड़ियाँ हैं...' ऐसा करके अपने को अहोभाव से भरते गये।

वया जादू हणी मुहिजे जिय में जोगी...

एक बार संत पुरुष की ओर देखा तो फिर उनकी आँखों की पुतलियाँ दीवार पर अंकित चित्र की भाँति स्थिर हो गयीं। पलकें तक नहीं गिर रहीं थीं। संत ने देखा कि 'यह तो कोई पुण्यात्मा है, भक्त हृदय है। यह क्यों अंग्रेजों की गुलामी करे ? यह क्यों संसार चक्र में फँसे ? ये गुलाम होकर अपने साहबों को सलाम मारे अथवा इसके गुलाम इसको सलाम मारें तब यह सुखी हो। यह भी तो एक गुलामी ही है कि अपने से बड़े अधिकारी की गुलामी करो या अपने से छोटे आपकी खुशामद करें तब सुखी हों। इसे तरक्की मिले तब आप सुखी हो ? अहंकार को पोसनेवाले नकली सुख हेतु यह साहबों की गुलामी क्यों करे। इसे तो सुख का दाता बनाना चाहिए।'

जो संत को ठीक से जानता है, मानता है, देखता है वह सुख का गुलाम कब तक रहेगा ? वह ईश्वर से दूर कब तक रहेगा ? संत मानों, अपने आत्म-ईश्वर से कह रहे हैं कि 'जो मेरी तरफ अहोभाव से एकटक देख रहा है वह तेरे नाते ही तो देख रहा है यार !'

बस, संत के हृदय में उसके लिए जरा-सी जगह हो गयी... संत के हृदय में जगह होना कोई बच्चों का खेल नहीं है।

वह अधिकारी संत की ओर खूब स्नेह से, पवित्र भाव से एकटक देखे जा रहा था... दुनिया की वस्तुओं के लिए नहीं, अपितु ईश्वर के नाते संत को देख रहा था... संत भी अपनी करुणा-कृपा बरसाते जा रहे थे। बाहर के कई लोग वहाँ थे लेकिन उस अधिकारी ने जो पाया वह गज़ब का पाया। हद कर दी उन देनेवाले महापुरुष ने भी !

वाइसराय की पत्नी दर्शन करके उठी। अधिकारी उसको निवास पर छोड़कर पुनः संत के चरणों में जा पहुँचा। संत के श्रीचरणों में गिरते हुए अधिकारी ने कहा :

''महाराज ! मैं नौकरी से त्यागपत्र देकर सदा के लिए आपके चरणों में समर्पित होना चाहता हूँ और सदा के लिए इस संसार की मायाजाल से बचना चाहता हूँ।''

संत बोले : ''देख, तू तो अच्छा अधिकारी है, सुरक्षा विभाग का अच्छा पद है तेरे पास।''

''महाराज ! यह पद तो आखिर एक दिन छीनं लिया जायेगा। मृत्यु के एक झटके में सब छूट जायेगा। मुझे तो वह पद चाहिए जिस पद पर आप प्रतिष्ठित हैं। मुझे तो 'यार की मौज' (ईश्वरीय आनंद) चाहिए। महाराज ! मुझे तो केवल आपकी कृपा की जरूरत है। आप मुझे स्वीकार कर लें, बस।''

जिस आनंद में संत रैदास रमण करते थे, उस आनंद की एक बूँद मीरा को मिली तो वह भी उसमें सराबोर हो गयी। उसी आनंद को पाने की जिज्ञासा प्रगट की इस अधिकारी ने। एक नन्ही-सी चिन्गारी ही काफी होती है ज्वाला प्रगट करने के लिए...

साकी ! तू यह न सोच कि गुरु के मयखाने में कहीं शराब खत्म तो नहीं हो गयी। नहीं, गुरु के मयखाने की अगर एक बूँद भी लेगा तो तू खुद मयखाना बन जायेगा। तू खुद अमृतालय बन जायेगा। गुरु की करुणा-कृपा का एक अमृतबिंदु पीयेगा तो तू स्वयं अमृत का झरना बन जायेगा।

जिसे सच्चे संत स्वीकार कर लें समझो, उसको भगवान ने स्वीकार कर लिया और जिसे भगवान स्वीकार कर लें फिर वह भगवान के बिना नहीं रह सकता और भगवान उसके बिना नहीं रह सकते। फिर बाहर से महाराज और भगवान लगते तो दो हैं लेकिन होता है वही अठखेलियाँ करता ब्रह्म...

अधिकारी : ''महाराज ! यार से मिला दो।''

संत : ''पक्की बात है ?''

अधिकारी : ''महाराज ! बिल्कुल पक्की बात है।''

संत : ''पूरी तैयारी है ?''

अधिकारी : ''महाराज ! मैं पूरे-का-पूरा आपके चरणों में समर्पित हूँ।''

संत : ''अच्छा, तू अपनी पत्नी और माता-पिता से पहले सम्मति लेकर आ कि मैं इस दिशा में जा रहा हूँ।''

अधिकारी : ''महाराज ! वे अगर हाँ-ना करें तो...''

संत : ''इससे तेरी दृढ़ता का पता भी चल जायेगा, जा।''

उस अधिकारी की दृढ़ता भी गज़ब की थी ! वह घर गया। पत्नी रोयी-धोयी तो उसको समझा दिया। माता-पिता ने कहा : ''तू चला जायेगा तो पीछे हमारा कौन ?''

अधिकारी : ''हे माँ ! हे पिताजी ! मेरे पहले आपका कौन था ? मेरे और आपके पहले भी कई जन्म हो चुके हैं, तब कौन किसका था ? अगर मेरा जन्म न होता तब आपका कौन होता ? अगर नौकरी करते-करते फौज में मारा जाता तब आपका कौन होता ? मेरा, आपका, सबका रक्षक परमात्मा पहले भी था, अभी भी है और बाद में भी वही रहेगा। अब आप उसीकी शरण लो न। बेटे की ममता करके क्यों आप मुझे एवं अपने-आपको ईश्वर से अलग करते हो ?''

संत-दर्शन करके लौटे हुए पुत्र की बात का प्रभाव माता-पिता पर पड़ा एवं उन्होंने पुत्र को अनुमति दे दी। माता-पिता और पत्नी ने सम्मति अर्थात् सहमति दे दी कि 'तुम जिस रास्ते जाते हो, ठीक है। हम अपनी व्यवस्था कर लेंगे।'

करना-कराना तो शरीर का होता है और शरीर का तो प्रारब्ध होता ही है। यह तो सब जानते हैं। जरूरी नहीं है कि बेटे सुख ही दें। कइयों को तो बेटे सताते भी हैं और कइयों को तो बेटे होते ही नहीं हैं। कइयों के बेटे होते हुए भी अलग रहते हैं और पड़ोसी सेवा कर लेते हैं।

पिता ने कहा : ''अच्छा, बेटा ! हम समझ गये कि न बेटा सुख देता है न बेटी सुख देती है, न पति सुख देता है न पत्नी सुख देती है, न धन सुख देता है न विषय सुख देता है। असली सुख तो यार की मौज में है, ईश्वरीय आनंद में है।''

वह अधिकारी माता-पिता एवं पत्नी की सहमति लेकर नौकरी से त्यागपत्र देकर पहुँचा स[illegible] के चरणों में। वाइसराय की पत्नी तो बाहर से ब[illegible] का दर्शन करके विदेश पहुँच गयी लेकिन उस[illegible] सुरक्षा के लिए आया हुआ अधिकारी दर्शन कर[illegible] सचमुच में 'स्वदेश' पहुँच गया। 'स्वदेश' अर्थ[illegible] आत्मा के देश में पहुँच गया।

बीकानेर में संत से दीक्षा लेकर भूतपूर्व सुर[illegible] अधिकारी ने संन्यास ग्रहण किया। अब तो वे ब[illegible] विरक्त रहने लगे। तालाब के किनारे एक टेक[illegible] थी, उसीमें थोड़ा-सा गड्ढा बनाकर ध्यान-भज[illegible] करने लगे। वे कई वर्षों तक उसीमें रहकर ध्यान[illegible] भजन करते रहे। इतना जप बढ़ा दिया, इतन[illegible] विवेक तीव्र कर दिया कि बाहर की किसी चीज क[illegible] लाचारी न रही।

बीकानेर की धानमंडी में कभी-कभी जा बैठते[illegible] लोग कहते : ''पहले तो सुरक्षा विभाग का अधिकार[illegible] था। अब साधु बन बैठा है... बड़ा ढोंग करता है... धूर्त है...'' इस प्रकार कोई कुछ कहता, कोई कुछ[illegible] किंतु वे तो सदैव अपने यार की ही मौज में रहते।

कोई पूछता : ''आप कौन हैं ?''

जवाब मिलता : ''यार की मौज।''

''खाना खाओगे ?''

''यार की मौज।''

''मार खाओगे ?''

''यार की मौज।''

'यार की मौज-यार की मौज' बोलते-बोलते सचमुच में वे यार की मौज का अर्थ अपने हृदय में पूरे-का-पूरा समेट लेते थे।

कोई पूछता : ''बाबा ! खाना खा लिया ?''

''यार ने यार को खिला दिया।''

''पानी पी लिया ?''

''यार ने यार को पिला दिया।''

''अच्छा, आराम कर लिया ?''

''यार ने यार को यार पर ही सुला दिया।''

''यार पर कैसे सुला दिया ?''

''ये सारा यार ही तो है। धरती भी उस यार की है। यार ही धरती होकर बैठा है। उस यार पर ही हम सोये।''

वे यार की मौज में इतने मशगूल हो गये कि लोग कुछ-का-कुछ बोलते लेकिन उनके चेहरे पर शिकन तक न पड़ती । वे सोचते : 'बोलनेवाले में भी तू यार ही है । तेरी मौज है, कुछ भी बोल । कैसा भी दे, कैसा भी ले, यार की मौज है ।'

धानमंडी, बीकानेर के एक भक्त ने देखा कि महाराज 'कई दिनों से बैठे हैं । कुछ खाया-पीया होगा कि नहीं ?' उसने पूछा : ''महाराज ! खाना खाओगे ?''

महाराज बोले : ''यार को नहीं खाना है ।''

भक्त : ''कौन यार ?''

महाराज : ''यार की मौज ।''

कुछ दिनों के बाद फिर कोई व्यक्ति आया । उसने देखा कि कोई मस्त फकीर है, पहुँचा हुआ । उसने पूछा : ''पानी पीयेंगे, महाराज ?''

महाराज : ''यार यार को पानी पिला दे तो मेरा क्या जाता है ?''

अर्थात् तेरे दिल का यार इस दिल में बैठे हुए यार को पानी पिलाता है तो मेरा क्या जाता है ? कैसी तात्त्विक समझ है !

वह आदमी पूरी सुराही भरकर पानी लाया । बाबा ने कहा : ''यार ! पूरी सुराही भरकर पानी पिलाना है ? ठीक है, पिला दे ।''

और बाबा पूरी सुराही का पानी पी गये !

कोई अहोभाव से पानी पिला जाता तो कोई कुछ-का-कुछ सुना जाता लेकिन इससे न उनको हर्ष होता न क्षोभ । क्षोभ अहंकार को होता है, क्षोभ संकीर्णता को होता है । क्षोभ अपने-आपको शरीर मानने से होता है, क्षोभ अपने-आपको धनवाला, पदवाला, सत्तावाला मानने से होता है, नहीं तो शुद्ध चैतन्य में, यार की मौज में क्षोभ के लिए जगह ही कहाँ है ? सागर की लहरों में बनना और मिटना होता है । कोई लहर बड़ी होती है तो कोई छोटी, कहीं झाग होता है तो कहीं बुलबुले... ये सब सागर की ऊपरी सतह पर होते हैं । सागर की गहराई में कोई गड़बड़ नहीं होती, केवल शांत जल होता है । ऐसे ही आत्मा की गहराई में शांत यार बैठा है । वहाँ तो मौज-ही-मौज है, आनंद-ही-आनंद है । (क्रमशः)

हिन्दुत्व की बात करना साम्प्रदायिकता कैसे ?

हमारी आर्य संस्कृति एक दिव्य संस्कृति है । इसमें प्राणिमात्र के हित की भावना है । हिन्दुत्व को सांप्रदायिक कहनेवालों को यह समझ लेना चाहिए कि हिन्दुत्व अन्य मत-पंथों की तरह मारकाट करके अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा की पूर्ति हेतु किसी व्यक्ति विशेष द्वारा निर्मित नहीं है तथा अन्य तथाकथित शांतिस्थापक मतों की तरह हिन्दू धर्म ने यह कभी नहीं कहा कि जो हिन्दू नहीं है उसे देखते ही मार डालो और मंदिरों के अलावा सारे पूजास्थलों को नष्ट कर दो । जो हिन्दू बनेगा उसीका उद्धार होगा दूसरे का नहीं । ऐसी बेहूदी बातें हिन्दू धर्म एवं समाज ने कभी भी स्वीकार नहीं की । फिर भी हिन्दुत्व की बात करने को सांप्रदायिकता कहना कितना बड़ा पाप है !

हिन्दुत्व एक व्यवस्था है मानव में महामानव और महामानव में महेश्वर को प्रगट करने की । यह द्विपादपशु सदृश उच्छृंखल व्यक्ति को देवता बनानेवाली एक महान परंपरा है । **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का उद्घोष केवल इसी संस्कृति के द्वारा किया गया है...

विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता भारत में ही मिली है । संसार का सबसे पुराना इतिहास भी यहीं पर उपलब्ध है । हमारे ऋषियों ने उच्छृंखल यूरोपियों के जंगली पूर्वजों को मनुष्यत्व एवं सामाजिक परिवेश प्रदान किया, इस बात के लाखों ऐतिहासिक प्रमाण

आज भी उपलब्ध हैं।

यूनान के प्राचीन इतिहास का दावा है कि भारतवासी वहाँ जाकर बसे तथा वहाँ उन्होंने विद्या का खूब प्रचार किया। यूनान के विश्वप्रसिद्ध दर्शनशास्त्र का मूल भारतीय वेदान्त दर्शन ही है।

यूनान के प्रसिद्ध विद्वान एरियन ने लिखा है : 'जो लोग भारत से आकर यहाँ बसे थे, वे कैसे थे ? वे देवताओं के वंशज थे, उनके पास विपुल सोना था। वे रेशम के दुशाले ओढ़ते थे और बहुमूल्य रत्नों के हार पहनते थे।'

एरियन भारतीयों के ज्ञान, चरित्र एवं उज्ज्वल-तेजस्वी जीवन के कारण उन्हें देवताओं के वंशज कहता है। यहाँ पर उसने भारतीयों के आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास को स्पष्ट किया है।

विश्व का आदिग्रंथ 'ऋग्वेद' हमारे ऋषियों की ही देन है। संसार की जिस अनादिकालीन व्यवस्था को आज के बुद्धिहीन लोग संप्रदाय की दृष्टि से देखते हैं, उसी व्यवस्था से अध्यात्म का उदय हुआ है। विशुद्ध अध्यात्म विद्या के द्वारा भगवद्प्राप्ति का मार्ग इसीने बताया जबकि यूरोप और अरब में धर्म के नाम पर हिंसा, लूट, बलात्कार जैसे पाशविक कृत्यों को ही बढ़ावा मिला, यह बात उनके इतिहास एवं धर्मग्रंथों से स्पष्ट हो जाती है।

सैमुअल जानसन के अनुसार : 'हिन्दू लोग धार्मिक, प्रसन्नचित्त, न्यायप्रिय, सत्यभाषी, दयालु, कृतज्ञ, ईश्वरभक्त तथा भावनाशील होते हैं। ये विशेषताएँ उन्हें सांस्कृतिक विरासत के रूप में मिली हैं।'

यही तो है वह आदर्श जीवनशैली जिसने समस्त संसार को सभ्य बनाया और आज भी विलक्षण आत्ममहिमा की ओर दृष्टि, जीते-जी जीवनमुक्ति, शरीर बदलने व जीवन बदलने पर भी अबदल आत्मा की प्राप्ति तथा ऊँचे शाश्वत मूल्यों को बनाये रखने की व्यवस्था इसमें विराजमान है। यदि हिन्दू समाज में कहीं पर इन गुणों का अभाव भी है तो उसका एकमात्र कारण है धर्मनिरपेक्षता के भूत का कुप्रभाव। जब इस आदर्श सभ्यता को सांप्रदायिकता का नाम दिया जाने लगा तथा कमजोर मन-बुद्धिवाले लोग इ सहमत होने लगे तभी इन आदर्शों की हिन्दू स में कमी होने लगी और पश्चिमी पशुता ने अप जमा लिये। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि अ किसी भी मत-पंथ के अस्त होने से विश्वम की इतनी दुर्गति नहीं हुई जितनी हिन्दू धर्म आदर्श जीवन-पद्धति को छोड़ देने से हुई।

मोहम्मद साहब से १५६ वर्ष पूर्व हुए अ के जिर्हम बिन्तोई नामक प्रसिद्ध कवि की कविता इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण भारतीय इतिहास के अनुसार भारत के सम्र विक्रमादित्य ने संपूर्ण अरब को जीतकर अ साम्राज्य में मिलाया था। सम्राट विक्रमादित्य शासन से पूर्व और उसके बाद की स्थिति व वर्णन हम वहाँ के विख्यात कवि की रचना में देखें तो अच्छा है। अरबी भाषा में लिखी उ कविता का अर्थ इस प्रकार है :

'वे अत्यंत भाग्यशाली लोग हैं जो सम्रा विक्रमादित्य के शासनकाल में जन्मे। अपनी प्रज के कल्याण में रत वह एक कर्त्तव्यनिष्ठ, दया एवं नेक राजा था। किन्तु उस समय खुदा क भूले हुए हमलोग (अरबवासी) इन्द्रिय विषय-वासनाओं में डूबे हुए थे, षड्यंत्र और अत्याचार करना खूब प्रचलित था। हमारे देश को अज्ञान के अंधकार ने घेर रखा था। ...अपने ही अज्ञान के कारण हम शांतिपूर्ण और व्यवस्थित जीवन से भटक गये थे। किन्तु शिक्षा का वर्त्तमान ऊषाकाल एवं सुखद सूर्यप्रकाश उस नेक चरित्र सम्राट विक्रम की कृपालुता का परिणाम है। उसका दयामय जीवन विदेशी होने पर भी हमारी उपेक्षा नहीं कर पाया। उसने अपना पवित्र धर्म हमलोगों में फैलाया (धर्म का प्रचार किया धर्मान्तरण नहीं)। उसने अपने देश से विद्वान लोग भेजे जिनकी प्रतिभा सूर्य के प्रकाश सदृश हमारे देश में चमकी। उन विद्वान और दूरदृष्टा लोगों की दयालुता एवं कृपा से हम फिर एक बार खुदा के अस्तित्व को अनुभव करने लगे और सत्य के मार्ग पर चलने लगे। वे हमें शिक्षा देने के लिए महाराज विक्रमादित्य के आदेश पर ही

यहाँ आये थे।'

(संदर्भ ग्रंथ : भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें, पी.एन.ओक)

सम्राट विक्रमादित्य के शासन ने अरब की कायापलट कर दी, हिंसा, षड्यंत्र एवं अत्याचारों की धरा पर स्वर्ग लाकर रख दिया परंतु अरब से आये मुगल शासकों ने भारत में क्या किया ? अंग्रेजों ने भारत में आकर यहाँ की जनता के साथ कैसा व्यवहार किया ? यदि पत्थरदिल व्यक्ति भी उस इतिहास को पढ़े तो वह भी पीड़ा से तड़प उठेगा।

बस, यही तो अंतर है हिन्दुत्व तथा अन्य सम्प्रदायों में । इतना बड़ा अंतर होने पर भी हिन्दुत्व को अन्य सम्प्रदायों के साथ रखा जाना बहुत बड़ी मूर्खता है ।

भारतीय संस्कृति के प्रति विश्वभर के महान विद्वानों की अगाध श्रद्धा अकारण नहीं रही है। इस संस्कृति की उस आदर्श आचार संहिता ने समस्त वसुधा को आध्यात्मिक एवं भौतिक उन्नति से पूर्ण किया, जिसे हिन्दुत्व के नाम से जाना जाता है।

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात ते सिल पर परत निसान॥

अभ्यास ही गुरु है। तुम कठिन से कठिन अभ्यास करो, साधना का अभ्यास करो तो तुम अपने साध्य तक पहुँच जाओगे। अन्यथा, गुरु तुम पर दया करके यदि कोई चमत्कार भी कर दिखायें और तुम्हें समाधि-दशा में भी पहुँचा दें, पर अभ्यास के अभाव में तुम उसका सत्फल नहीं प्राप्त कर सकोगे और तुम्हारी स्थिति त्रिशंकू की भाँति बन सकती है। अतः गुरु-उपदेश को श्रवण करने के लिए सदैव तत्पर रहो।

* जब तक मनुष्य को अपनी वर्त्तमान स्थिति की तुच्छता का ख्याल नहीं आता और अपनी महान स्थिति को पाने की इच्छा नहीं होती तब तक भले ही ब्रह्माजी उपदेश देते हों या साक्षात् श्रीहरि अवतरित हो जायं फिर भी विवेक नहीं जागेगा।

(आश्रम की पुस्तक 'जीते जी मुक्ति' से)

* संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से *

वाशिंग्टन की सच्चाई

जार्ज वाशिंग्टन एक किसान का लड़का था। उसके पिता ने एक नन्ही-सी कुल्हाड़ी उसे खेलने के लिए दी। लड़का कुल्हाड़ी लेकर बगीचे में गया और कोई पौधा काट दिया, किसी पेड़ की डाल काट दी, अच्छे फल देनेवाले एक वृक्ष को भी बुरी तरह तहस-नहस कर डाला।

पिता ने जब बगीचे को उजड़ा हुआ देखा तो उनके सिर पर तो मानो पहाड़ गिर पड़ा। वे चिल्ला उठे : ''मेरे जीवन की कमाई को किसने तबाह कर डाला ?''

इतने में उनके पुत्र ने आकर पूछा : ''पिताजी ! क्या बात है ?''

पिताजी : ''बेटा ! बगीचे को किसने उजाड़ डाला ?''

लड़का : ''पिताजी ! यह सब तो मैंने ही काटा है। मुझे ऐसा हुआ कि देखूँ, मैं अपनी कुल्हाड़ी से पेड़ को काट सकता हूँ कि नहीं ?''

पिताजी : ''यह कीमती पेड़ भी तुमने ही काट डाला ?''

लड़का : ''जी, पिताजी ! मुझे यह पता नहीं था कि यह कीमती पेड़ है, इसे नहीं काटना चाहिए। मैंने ही इसको कुल्हाड़ी से काट डाला हैं।''

यह सुनकर पिता की आँखों में नाराजगी की जगह एक चमक आ गयी। उन्होंने बेटे को गले से लगा लिया।

लड़का : ''पिताजी ! मैंने तो नुकसान कर

दिया है ।''

पिताजी : ''तुमने नुकसान तो किया है लेकिन तुमने सत्य बोला है। तुम एक दिन जरूर बड़े आदमी बनोगे ।''

जो सच्चाई से अपना गुनाह स्वीकार कर लेता है उसका गुनाह भी इतना बड़ा नहीं दिखता है, लेकिन जो झूठ-कपट करता है उसका छोटा गुनाह भी भारी हो जाता है ।

जार्ज वाशिंग्टन की सच्चाई के सद्‌गुण से उसके पिता का हृदय पिघल गया और उनके हृदय से दुआ निकली : 'बेटा ! तेरा यश हो ।'

वही बालक आगे चलकर अमेरिका का राष्ट्रपति जार्ज वाशिंग्टन हुआ ।

*

लिंकन की सच्चाई

अब्राहम लिंकन बचपन में चाय की दुकान पर नौकरी करते थे। एक दिन एक महिला पावभर चाय लेने के लिए आयी । जल्दी-जल्दी में लिंकन ने उसे आधा पाव चाय तौलकर दे दी ।

रात्रि को जब लिंकन ने हिसाब किया तो पता चला कि उस महिला ने पावभर चाय के पैसे दिये थे और मैंने उसे आधा पाव चाय ही दी है । वह बाकी की आधा पाव चाय देने के लिए, उसी समय लालटेन लेकर पैदल निकल पड़ा ।

उस महिला का घर तीन मील दूर था । वहाँ पहुँचकर उसने द्वार खटखटाया। वह महिला आयी, लिंकन ने कहा : ''क्षमा करना । मैंने पावभर चाय के पैसे लिये थे लेकिन जल्दी-जल्दी में गलती से आधा पाव चाय ही दी थी । बाकी की आधा पाव चाय आप ले लीजिये ।''

महिला ने कहा : ''बेटा ! तुझमें इतनी सच्चाई है, उसका फल भगवान जरूर देगा। आगे चलकर तेरा नाम होगा ।''

वही अब्राहम लिंकन आगे चलकर अमेरिका का राष्ट्रपति बना ।

जिसके जीवन में सच्चाई है, ईमानदारी है वह अवश्य महान बनता है ।

व्यावहारिक जीवन में मंत्रशक्ति

(गतांक का शेष)

* सर्व व्याधिनाशक, अकालमृत्युहारक, दीर्घजीवन प्रदायक महामृत्युंजय मंत्र *

ॐ हौं जूँ सः । ॐ भूर्भुवः स्वः । ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । स्वः भुवः भूः ॐ । सः जूँ हौं ॐ ।

* विघ्न-बाधाहरण मंत्र *

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

यात्रा के पूर्व एक माला करने से यात्रा में आनेवाली विघ्न-बाधाओं का शमन होता है ।

*

जीवनी शक्ति

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

हमारे स्वास्थ्य का आधार है - जीवनी शक्ति (वाईटल एंनर्जी) । यदि हमारी जीवनी शक्ति ठीक है तो हम रोगमुक्त रह सकते हैं । अगर जीवनी शक्ति दुर्बल है तो रोगों का आक्रमण होता है और जीवनी शक्ति नष्ट होने से मृत्यु आ जाती है ।

जीवनी शक्ति के तीन प्रमुख कार्य हैं :

(१) शरीर का पोषण, निर्माण एवं विकास करना ।

(२) विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालना ।

(३) शरीर की मरम्मत करना ।

शरीर में उत्पन्न होनेवाले मल-मूत्र, पसीना, कफ आदि का पूर्ण निकास न होने पर, उन विजातीय पदार्थों के शरीर में ही जमा रहने पर रोग उत्पन्न होते हैं।

इन विजातीय पदार्थों के रक्त में मिलने से बुखार, हृदयरोग एवं चर्मरोग उत्पन्न होते हैं। आँतों में जमा होने पर कब्ज, गैस, दस्त-पेचिश, बवासीर, भगंदर, हर्निया एवं एपेन्डीसाईटीस को जन्म देते हैं। मस्तिष्क पर उनका प्रभाव पड़ने पर सिरदर्द, अनिद्रा, मिर्गी व पागलपन आदि उत्पन्न होते हैं। गुर्दों में प्रभाव पड़ने से पथरी आदि की संभावना बढ़ जाती है। फेफड़ों में उन विजातीय पदार्थों के जमा होने पर सर्दी, खाँसी, दमा, न्यूमोनिया, क्षय एवं कैंसर की संभावना रहती है।

मानसिक तनाव, चिंता, क्रोध, दुःख, आवेश, भावुकता तथा अधीरता आदि के कारण हृदय, मस्तिष्क एवं स्नायु के रोग होते हैं।

जीवनी शक्ति दुर्बल होने के पाँच मुख्य कारण हैं :

(१) सामर्थ्य से अधिक शारीरिक तथा मानसिक कार्य करना एवं आवश्यक विश्राम न लेना।

(२) भय, चिंता, क्रोध आदि के कारण शरीर व मन को तनाव में रखना।

(३) पौष्टिक आहार का अभाव या आवश्यकता से अधिक खाना। नशीली वस्तुओं एवं गलत आहार का सेवन। रात्रि को देर से भोजन करना व दिन को भोजन करके सोना।

उपवास की महत्ता न समझने से भी जीवनी शक्ति का ह्रास होता है। भविष्य में कभी भी किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव करें तो उपवास करें अथवा रसाहार या फलाहार पर रहकर, जीवनी शक्ति को पाचन कार्य में कम व्यस्त रखकर शरीर की शुद्धि तथा मरम्मत के लिए अवसर देंगे तो तुरंत स्वास्थ्य लाभ होगा।

(४) वीर्यरक्षा (ब्रह्मचर्य) की उपेक्षा करना।

(५) विषैली औषधियों, इंजेक्शनों का प्रयोग तथा ऑपरेशन कराना एवं प्रकृति के स्वास्थ्यवर्धक तत्त्वों से अपने को दूर रखना।

उपरोक्त ५ कारणों को समझकर अपने जीवन में सुधार लाने से हम अपनी जीवनी शक्ति को प्रबल रखकर सदा स्वस्थ रह सकते हैं।

अगर जीवनी शक्ति मजबूत है तो रोग आयेंगे ही नहीं और अगर आयें भी तो टिकेंगे नहीं। जीवनी शक्ति प्राणायाम से बढ़ती है। सूर्य की किरणों में भी रोगप्रतिकारक शक्ति होती है।

सूर्य की किरणों में बैठकर १० प्राणायाम करें और शवासन में लेट जायें। जहाँ रोग है वहाँ हाथ घुमाकर रोग को मिटाने का संकल्प करें। इससे बड़ा लाभ होता है।

प्राणायाम करने से मनोबल भी बढ़ता है और बुद्धिबल भी बढ़ता है। बहुत-से ऐसे रोग होते हैं जिनमें कसरत करना संभव नहीं होता लेकिन प्राणायाम किये जा सकते हैं।

प्राणायाम करने से एक विशेष फायदा यह होता है कि हमारे रोमकूप खुलने लगते हैं। हमारे शरीर में कई हजार रोम छिद्र हैं। उनमें से किसी मनुष्य के २००, किसीके ३०० तो किसी-किसीके ५०० छिद्र काम करते हैं शेष सब छिद्र बंद पड़े रहते हैं। प्राणायाम से ये बंद छिद्र खुल जाते हैं।

जो लोग प्राणायाम नहीं करते उनके वे छिद्र बंद ही पड़े रहते हैं। इससे उनकी प्राणशक्ति कमजोर हो जाती है और उन बंद छिद्रों में जीवाणु उत्पन्न होते हैं। ज्यों ही रोगप्रतिकारक शक्ति कम होती है वे जीवाणु दमा, टी.बी. आदि बीमारियों का रूप ले लेते हैं। प्राणायाम के अभ्यास से ऐसे कई रोगों के जीवाणु बाहर चले जाते हैं।

प्राणायाम से रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है और इस शक्ति से भी कई जीवाणु मर जाते हैं। प्राणायाम करने से विजातीय द्रव्य नष्ट हो जाते हैं और सजातीय द्रव्य बढ़ते हैं। इससे भी कई रोगों से बचाव हो जाता है।

प्राणायाम से वात-पित्त-कफ के दोषों का शमन् होता है। अगर प्राण ठीक से चलने लगेंगे तो वात-पित्त-कफ आदि त्रिदोषों में जो गड़बड़ है, वह गड़बड़ी ठीक होने लगेगी।

वात-पित्त-कफ का शमन करने के लिए तुलसी के पत्ते वरदान सिद्ध होते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि आप ५० ग्राम तुलसी के पत्ते खा लो। ऐसा करने से गर्मी चढ़ जायेगी। तुलसी के ५-७ पत्ते खाने हितकारी हैं।

मंत्रजाप भी जीवनी शक्ति को बढ़ाता है।

इस प्रकार नियमित प्राणायाम, सुबह की हवा, सूर्य की किरणें एवं तुलसी के पत्तों का सेवन तथा मंत्रजाप - ये रोगप्रतिकारक शक्ति को बढ़ाते हैं, मन को प्रफुल्लित रखते हैं और बुद्धि को तेजस्वी बनाने में सहायक होते हैं।

*

आजाद भारत के गुलाम नेता फिर से कैसे आजाद हों...

ब्रिटेन की व्यापार एवं विदेशी निवेश मंत्री सुश्री पैट्रीसिया हैविट ने दीपावली के अवसर पर आयोजित एक समारोह में हिन्दी में भाषण देकर वहाँ मौजूद भारतीय मूल के नागरिकों को न सिर्फ चकित कर दिया अपितु उनका स्नेह भी पा लिया।

ब्रिटेन में रह रहे भारतीयों ने दीपावली के अवसर पर एक समारोह का आयोजन किया था, जिसमें सुश्री हैविट आमंत्रित थी। जब सुश्री हैविट भारतीय परिधान पहनकर एवं तिलक लगाकर समारोह में पहुँची तो सभीको आश्चर्य हुआ परंतु जब उन्होंने मंच पर आकर हिन्दी में 'दीपावली के शुभ अवसर पर बधाई...' यह पंक्ति कही तो सभी लोग दंग रह गये।

ब्रिटेन की मंत्री जब भारत के मूल निवासियों के बीच जाती है तो हिन्दी में भाषण देकर सबका स्नेह पाती है परंतु भारत के कई नेता अपने देश की जनता के समक्ष एवं संसद में अंग्रेजी में भाषण देकर अपनी गुलाम मानसिकता का परिचय देते हैं। ऐसे लोग यदि सुश्री हैविट से यह सद्गुण ग्रहण कर लें तो कितना अच्छा होगा।

हरि-नाम की प्याली ने छुड़ायी शराब की बोतल

सौभाग्यवश, गत २६ दिसम्बर १९९८ को पूज्यश्री के १६ शिष्यों की एक टोली दिल्ली से हमारे गाँव में हरि-नाम का प्रचार-प्रसार करने पहुँची।

मैं बचपन से ही मदिरापान, धूम्रपान व शिकार करने का शौकीन था। पूज्य बापू के शिष्यों द्वारा हमारे गाँव में जगह-जगह पर तीन दिन तक लगातार हरि-नाम का कीर्तन करने से मुझे भी हरि-नाम का रंग लगता जा रहा था।

उनके जाने के पश्चात् एक दिन शाम के समय रोज की भाँति मैंने शराब की बोतल निकाली तथा जैसे ही बोतल को खोलने के लिए उसका ढक्कन घुमाया तो उस ढक्कन के घूमने से मुझे 'हरि ॐ... हरि ॐ...' की ध्वनि सुनाई दी। इस प्रकार मैंने दो-तीन बार ढक्कन घुमाया और हर बार मुझे 'हरि ॐ' की ध्वनि सुनाई दी।

कुछ देर बाद मैं उठा तथा पूज्यश्री के एक शिष्य के घर गया। उन्होंने थोड़ी देर मुझे पूज्यश्री की अमृतवाणी सुनाई। अमृतवाणी सुनने के पश्चात् मेरा हृदय पुकारने लगा कि इन दुर्व्यसनों को त्याग दूँ। मैंने तुरन्त बोतल उठाई तथा जोर-से दूर खेत में फेंक दी।

ऐसे समर्थ व परम कृपालु सद्गुरुदेव को मैं हृदय से प्रणाम करता हूँ जिनकी कृपा से यह महत्त्वपूर्ण घटना मेरे साथ घटी तथा मेरा जीवन परिवर्तित हुआ।

- मोहन सिंह बिष्ट
भिरल्यासैन, अल्मोड़ा (उ. प्र.).

*

सूरत (गुज.) : दिनांक २५ से २७ दिसम्बर को यहाँ आयोजित विद्यार्थी शिविर में देश के कोने-कोने से आये हुए नौनिहालों ने विशाल संख्या में उपस्थित रहकर भारत के ऋषि परंपरा को जागृत रखनेवाले पूज्य बापूजी के सत्संग-सान्निध्य का लाभ लिया एवं जीवन को तेजस्वी बनाने की कुंजियाँ प्राप्त कीं। इन तीन दिनों में सूरत आश्रम ने एक आदर्श गुरुकुल का रूप धारण किया था। भारत के इन भावी कर्णधारों को संबोधित करते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''जीवन में ७-७ वर्ष के अंतर से मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि सप्त केंद्रों के विकास की प्रक्रिया शुरू होती है। बच्चे जब ७ वर्ष के हो जाते हैं तो उनके शरीर में एक प्रकार का रासायनिक परिवर्तन होता है जिससे उनमें शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक परिवर्तन होते हैं। इस मोड़ पर बच्चों को ललाट पर तिलक एवं शशांकासन करवाना चाहिए ताकि बच्चे के मेधावी होने में मदद मिले। पीपल की लकडी से बने गिलास में रखा पानी बच्चों को पिलाने से भी बच्चे मेधावी बनते हैं। एक बडा पुराना पीपल वृक्ष गिलास बनाने के लिए प्राप्त हुआ है। कुछ ही दिनों में समिति इस सेवाकार्य में सफल होगी। केवल पूनमव्रतधारियों को पूनम के अवसर पर यह गिलास प्राप्त होगा।''** पूज्यश्री ने बच्चों की १, ३ या ६ महीने की तेजस्वी तालीम शिविर होने की संभावना भी प्रकट की। २६ दिसम्बर, गीता जयंती के दिन उन्होंने जीवन में विश्व के सर्वोपरि ग्रंथ 'गीता' के अध्ययन की महिमा बताई। 'गीता' का ज्ञान जीते-जी मोक्ष प्रदान करता है इसलिए 'गीता जयंती' के दिन आनेवाली एकादशी को 'मोक्षदा एकादशी' के नाम से जाना जाता है।

२८ से ३० दिसम्बर को ध्यान योग शिविर संपन्न हुआ। तापी के तट पर शांत वातावरण में कुंडलिनी योग के अनुभवनिष्ठ आचार्य पूज्य बापूजी के सान्निध्य में, ध्यान की गहराईयों में आत्मिक शांति का अमृतपान देश-विदेश से आये हुए हजारों साधकों ने किया। ३० दिसम्बर को देश के विभिन्न क्षेत्रों से आये हुए हजारों पूर्णिमा व्रतधारियों ने दर्शन-सत्संग का लाभ लिया। पूज्यश्री ने कहा : **''हमारे जीवन में व्रत-नियम का बडा महत्त्व है। मन के कई जन्मों के संस्कार, दूषित वातावरण हमें साधनामार्ग से गिरने के कई प्रसंग खड़े कर देता है। लेकिन व्रत-नियम का दृढ़ता से पालन करनेवालों की रक्षा हो जाती है।''**

मोड़ासा (गुज.) : ३१ दिसम्बर से ५ जनवरी २००२ तक पूज्यश्री मोड़ासा के एकांत आश्रम में रहे।

अमदावाद (गुज.) : ५ जनवरी को पूज्यश्री का अमदावाद आश्रम में आगमन हुआ तथा ११ जनवरी को उत्तरायण शिविर हेतु पूज्यश्री ने गाँधीनगर के लिए प्रस्थान किया।

गाँधीनगर (गुज.) : हर वर्ष बढ़ते भक्तों के जनसैलाब के कारण इस वर्ष उत्तरायण शिविर गाँधीनगर, सेक्टर-११ के मैदान में १२ से १४ जनवरी को आयोजित की गयी। इस शिविर में हजारों साधक भक्तों के साथ गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेंद्र मोदी, गुजरात के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री केशुभाई पटेल, अनेक मंत्रीगण एवं अनेक आई.ए.एस. तथा आई.पी.एस. अधिकारी ने पूज्यश्री के सत्संग-सान्निध्य का खूब लाभ लिया। राजनेताओं को संबोधित करते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''जो नीति का स्वयं पालन करे व जनता से भी करा ले वही नेता है।''** उत्तरायण के पुण्यकाल में जप-ध्यान को महापुण्यदायी बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''आत्म-परमात्मस्वरूप में स्थिति करना, अज्ञान-अन्धकार से ऊपर उठकर आत्मज्ञान का प्रकाश पाना ही वास्तविक उत्तरायण है। अतः स्वार्थरहित प्रवृत्ति और वासनारहित निवृत्ति ये दो सूत्र साधकों को अपने**

जीवन में उतारने चाहिए। सुखमय जीवन जीने की ये सरल कुंजियाँ हैं।''

गुजरात की राजधानी गाँधीनगर में पहली बार इतने बड़े आध्यात्मिक कार्यक्रम का आयोजन हुआ, जिससे राजनेताओं को भी प्रजापालन की बहुमूल्य कुंजियाँ एवं प्रेरणा मिली।

छिंदवाड़ा (म.प्र.) : १५ जनवरी को पूज्यश्री का छिंदवाड़ा (खजरी) आश्रम में आगमन हुआ। १५ से १७ तारीख तक एकांतवास के समय में भी प्रतिदिन शाम को पूज्यश्री के दर्शन एवं सत्संग का लाभ श्रद्धालुओं को कुछ मिनटों तक मिलता रहा। १८ से २० जनवरी को एस.ए.एफ. मैदान में पूज्यश्री का जाहिर सत्संग कार्यक्रम हुआ। पूज्यश्री ने सत्संग में कहा : **''जीते-जी आत्मा-परमात्मा का ज्ञान पाकर मुक्त हो जाना ही बड़े-में-बड़ी बात है और यही मनुष्यमात्र का लक्ष्य है।''**

पिपरिया, बालाघाट : आत्मारामी संत का सत्संग समाज को मिलता रहे इसलिए पिपरिया के पुण्यात्माओं ने यहाँ पर आश्रम बनाया एवं २१ जनवरी को आश्रम के उद्घाटन के निमित्त से पिपरिया एवं आस-पास के लोगों को इस सत्पुरुष के दर्शन-सत्संग का खूब लाभ मिला।

बालाघाट एवं आस-पास के पचासों हजार लोगों को प्रभुरस से पावन कराने का निमित्त बना लिया बालाघाट समिति ने।

गोंदिया (महा.) : गोंदिया समिति ने यहाँ पर अपने अथक परिश्रम से उबड़खाबड़ जमीन पर भी सत्संग-भवन, जपमंदिर, पूज्यश्री की कुटिया आदि बनाकर मानों आश्रमरूपी नंदनवन का ही आविष्कार किया है। उनकी सत्संग की प्यास के कारण उन्हें २१ से २३ जनवरी त्रिदिवसीय सत्संग कार्यक्रम मिला। सत्संग में पूज्यश्रीने कहा : **''मनुष्य में अप्राप्त वस्तुओं के प्राप्ति की कामना होती है और प्राप्त विद्यमान वस्तु अथवा परिस्थितियों के प्रति ममता, राग रहता है। कुछ लोग ममता को तो त्याग देते हैं परंतु उनमें ममता-त्याग का अहंकार तो मौजूद ही रहता है। इनसे मुक्ति माना परम शांति की प्राप्ति।''**

नागपुर (महा.) : २५ से २८ जनवरी को नागपुर के रेशमबाग मैदान में पूज्यश्री का चार दिवसीय सत्संग कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। सत्संग कार्यक्रम के अंतिम दिन २८ जनवरी को देश-विदेश के विभिन्न भागों से आये हुए पूर्णिमा व्रतधारियों ने पूज्यश्री का दर्शन-सत्संग प्राप्तकर अपना व्रत पूर्ण किया। पूज्यश्री ने सत्संग में कहा : **''जगत की दृष्टि से ईश्वर न्यायकारी है, भक्तिमार्गवाले ईश्वर को दयालु मानते हैं तो ज्ञानमार्गी ईश्वर को तटस्थ मानते हैं। पर वास्तव में ईश्वर इन सब मान्यताओं से विलक्षण हैं। ईश्वर ईश्वर ही हैं। इनकी महिमा का वर्णन करना असीम को सीमित करने के समान है। यह मानवी मति का विषय नहीं है। जिसको वह (ईश्वर) वरण करता है, वह वही हो जाता है। यह राज समझ में तो आता है पर समझाया नहीं जाता। ॐ आनंद... ॐ ब्रह्म...''**

वसंत ऋतु में स्वस्थ रहने की अनेक कुंजियाँ बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''१८ फरवरी से वसंत ऋतु शुरू हो रही है। मौसम बदलने के कारण पाचनशक्ति में परिवर्तन होगा। इन दिनों में आहार थोड़ा कम लें ताकि स्वास्थ्य की सुरक्षा हो।''**

पूज्य बापूजी के आगामी सत्संग

(१) बैंगलोर में, १ से ३ फरवरी २००२, शालिनी ग्राउण्ड, जयानगर, ५वाँ ब्लाक, ११वाँ मेन। फोन : (०११८) २२३३८३८, ६५९६९७४, २२४२५४७. **(२) भावनगर में, ५ से ७ फरवरी २००२,** जवाहर मैदान। फोन : (०२७८) ८३२७३, ४२७८०१, ५१०३३४, २०९३०७. **(३) राजकोट में, ८ से १० फरवरी २००२,** रेसकोर्स मैदान। फोन : (०२८१) ८३३७०, ८३३७१, ८३३५४, ४५४४३८, ९८२५२७८७३५. **(४) बड़ौदा में, १४ से १७ फरवरी २००२,** नवलखी कम्पाउण्ड, राजमहल, बड़ौदा। फोन : (०२६५) ३५६४४४, ३५५२९६, ३९३७८७.

पुराने साधक श्री नरेंद्र मोदी ने पचीसों बार पूज्यश्री के सत्संग-अमृत का पान किया था।
गुजरात के मुख्यमंत्रीपद का कार्यभार सँभालने की पूज्यश्री के आशीष के बाद अब पावन प्रेरणा पा रहे हैं।

गाँधीनगर, गुजरात में १२ से १४ जनवरी, उत्तरायण शिविर में तीनों तनावों, तीनों तापों तथा तीनों दोषों से मुक्ति के पुनीत प्रयोगों का लाभ उठा रहे हैं पुण्यात्मा लोग।

निराले होते हैं वे लोग जिनके हृदय में सत्संगामृत की प्यास होती है और भगवद्स्वरूप संतों के श्रीचरणों में जा पाते हैं।
गोंदिया (महा.) के ऐसे ही धनभागी भक्तजन।

सबका मंगल सबका भला हो, गुरु चाहना ऐसी है...

पूज्यश्री ने की भक्ति, योग एवं ज्ञान की वर्षा... निहाल हो गये नागपुर (महा.) के सत्संगी...
धन्य-धन्य हो गये पूनम व्रतधारी साधक... ।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2002. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2002 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2002 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2002 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.